॥ श्री गणेशाय नमः ॥

# चाणक्य नीति

## दर्पण

### भाषा टीका सहित।

साहित्य-शास्त्र्युपाधिधारिणः—

पं० रामतेज पांडेयेन संस्कृतः

तथा

पं० रामबिहारी मिश्रेण च संशोधिता।


॥ प्रकाशक ॥

ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर,

राजादरवाजा, वाराणसी।

फोन ६४६५०





मूल्य ४) रुपया

* श्रीः *

# चाणक्य-नीति-दर्पणः

## भाषाटीका-सहितः

साहित्य-शास्त्र्युपाधिधारिणा—

पं० रामतेजपाण्डेयेन च संस्कृतः

तथा

पं० रामविहारी मिश्रेण संशोधितः

प्रकाशक—

ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर

राजादरवाजा, वाराणसी।

सन् १९८२ ]  [ मूल्य ४)००

* श्रीगणेशाय नमः *

# चाणक्यनीतिदर्पणः

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम् ।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम् ॥१॥

दोहा—सुमति बढ़ावन सबहि जन, पावन नीति प्रकास।
टीका चाणकनीति कर, भनत भवानीदास ॥ १ ॥

मैं उन विष्णु भगवान्को प्रणाम करके कि जो तीनों लोकों के स्वामी हैं, अनेक शास्त्रों से उद्धृत राजनीति-समुच्चय विषयक बातें कहूँगा ॥ १ ॥

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः ।
धर्मोपदेशं विख्यातं कार्याऽकार्यं शुभाऽशुभम् ॥२॥

दोहा—तत्त्व सहित पढ़ि शास्त्र यह, नर जानत सब बात ।
काज आकज शुभाशुभहिं, मरम नीति विख्यात ॥२॥

इस नीति के विषय को शास्त्र के अनुसार अध्ययन करके सज्जन धर्मशास्त्र में कहे शुभाशुभ कार्यको जान लेते हैं ॥२॥

तदहं संप्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया ।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ॥३॥

दोहा—मैं सोइ अब बरनन करूँ, अति हितकारक अङ्ग।
जाके जानत होहिं जन, सबही विधि सर्वज्ञ ॥ ३ ॥

लोगों की भलाई के लिए मैं वह बात बताऊँगा कि जिसे समझ लेने से मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है ॥ ३ ॥

**मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टास्त्रीभरणेन च।**
**दुःखिते सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ॥ ४ ॥**

दोहा—उपदेशत शिषमूढ़ कहँ; व्यभिचारिणि ढिग वास।
अरि को करत बिश्वास उर, विदुषहु लहत विनास ॥४॥

मूर्खशिष्य को उपदेश देनेसे, कर्कशा स्त्री का भरण-पोषण करने से और दुखियों का सम्पर्क रखने से समझदार मनुष्य को भी दुःखी होना पड़ता है ॥ ४ ॥

**दुष्टाभार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।**
**ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥ ५ ॥**

दोहा—भामिनि दुष्टा मित्र शठ, प्रति उत्तरदा भृत्य।
अहि युत बसत अगार में, सब विधि मरिबो सत्य ॥५॥

जिस मनुष्य की स्त्री दुष्टा है, नौकर उत्तर देनेवाला (मुँह लगा) है और जिस घर में साँप रहता है उस घरमें जो रह रहा है तो निश्चय है कि किसी न किसी रोज उसकी मौत होगी ही ॥५॥

**आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि।**
**आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ ६ ॥**

दोहा—धन गहि राखहु विपति हित, धनं ते वनिता धीर।
तजि वनिता धनकूँ तुरत, सबते राख शरीर ॥ ६ ॥

आपत्तिकाल के लिए धनको और धन से भी बढ़कर स्त्री की रक्षा करनी चाहिये। किन्तु स्त्री और धन से भी बढ़कर अपनी रक्षा करनी उचित है ॥ ६ ॥

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतश्च किमापदः।
कदाचिच्चलिता लक्ष्मीःसंचितोऽपविनश्यति ॥ ७ ॥

दोहा—आपद हित धन राखिये, धनिहिं आपदा कौन।
संचितहूँ नशि जात है, जो लक्ष्मी करु गौन ॥७॥

आपत्ति से बचने के लिए धन की रक्षा करनी चाहिये। इस पर यह प्रश्न होता है कि श्रीमान् के पास आपत्ति आयेगी ही क्यों? उत्तर देते हैं कि कोई ऐसा समय भी आ जाता है, जब लक्ष्मी रानी भी चल देती हैं। फिर प्रश्न होता है कि लक्ष्मी के चले जानेपर जो कुछ बचा बचाया धन है, वह भी चला जायगा ही ॥ ७ ॥

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः।
न च विद्यागमोऽप्यस्ति वासस्तत्र न कारयेत् ॥८॥

दोहा—जहाँ न आदर जीविका, नहिं प्रिय बन्धु निवास।
नहिं विद्या जिस देश में, करहु न दिन इक वास ॥८॥

जिस देश में न सम्मान हो, न रोजी हो, न कोई भाई-बन्धु हो और न विद्या का ही आगम हो, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥९॥

दोहा--धनिक वेदप्रिय भूप अरु, नदी वैद्य पुनि सोय ।
वसहु नाहिं इक दिवस तहँ, जहँ यह पञ्च न होय ॥९॥

धनी (महाजन) वेदपाठी ब्राह्मण, राजा, नदी और पाँचवें वैद्य, ये पाँच जहाँ न हों, वहाँ एक दिन भी न बसो ॥ ९ ॥

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता ।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्य्यात्तत्र सङ्गतिम् ॥१०॥

दोहा--दानदक्षता लाज भय, यात्रा लोक न जान ।
पाँच नहीं जहँ देखिये, तहाँ न बसहु सुजान ॥ १० ॥

जिसमें रोजी, भय, लज्जा, उदारता और त्यागशीलता, ये पाँच गुण विद्यमान नहीं, ऐसे मनुष्य से मित्रता नहीं करनी चाहिये ॥ १० ॥

जानीयात् प्रेषणे भृत्यान् बान्धवान् व्यसनागमे ।
मित्रं चापत्तिकाले तु भार्यां च विभवक्षये ॥११॥

दोहा--काज भृत्य कूँ जानिये, बन्धु परम दुख होय ।
मित्र परखियतु विपति में विभव विनाशित जोय ॥११॥

सेवा कार्य उपस्थित होने पर सेवकों की, आपत्तिकाल में मित्र की, दुःख में, बान्धवों की और धन के नष्ट हो जाने पर स्त्री की परीक्षा की जाती है ॥ ११ ॥

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥१२॥

दोहा—दुख आतुर दुरभिच्छ में, अरि जय कलह अभङ्ग ।
भूपति भवन मसान में, बन्धु सोई रहे सङ्ग ॥१२॥

जो बीमारी में, दुख में, दुर्भिक्ष में, शत्रु द्वारा किसी प्रकार का सङ्कट उपस्थित होनेपर, राजद्वार में और श्मशान पर जो ठीक समय पर पहुँचता है, वही बान्धव कहलाने का अधिकारी है॥१२॥

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवं परिषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेवहि ॥१३॥

दोहा—ध्रुव कूँ तजि अध्रुव गहै, चितमें अति सुख चाहि ।
ध्रुव तिनके नाशत तुरत, अध्रुव नष्ट ह्वै जाहि ॥१३॥

जो मनुष्य निश्चित वस्तु को छोड़कर अनिश्चित की ओर दौड़ता है तो उसकी निश्चित वस्तु भी नष्ट हो जाती है और अनिश्चित तो मनो पहले ही नष्ट थी ॥१३॥

वरयेत्कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम् ।
रूपशीलां न नीचस्य विवाहः सदृशे कुले ॥१४॥

दोहा—कुल जातीय विरूप दोउ, चातुर वर करि चाह ।
रूपवती तउ नीच तजि, समकुल करिय विवाह ॥१४॥

समझदार मनुष्य का कर्तव्य है कि वह कुरूपा भी कुलवती कन्या के साथ विवाह कर ले, पर नीच सुरूपवती के साथ न करे ।

क्योंकि विवाह अपने समान कुल में ही अच्छा होता है ॥१४॥

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखीनां शृङ्गिणां तथा ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषुराजकुलेषु च ॥१५॥

दोहा—सरिता शृङ्गी शस्त्र अरु, जिव जितने नखवन्त ।
तियको नृपकुलको तथा, करहिं विश्वास न सन्त ॥१५॥

नदियों का, शस्त्रधारियों का, बड़े-बड़े नखवाले जन्तुओं का, सींगवालों का, स्त्रियों का और राजकुल के लोगों का विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम् ।
नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥१६॥

दोहा—गहहु सुधा विषते कनक, मलते बहुकरि यत्न ।
नी[illegible] विद्या विमल, दुष्कुलते तियरत्न ॥१६॥

विष से भी अमृत, अपवित्र स्थान से भी कञ्चन, नीच मनुष्य से भी उत्तम विद्या और दुष्टकुल से भी स्त्रीरत्न को ले लेना चाहिए ॥ १६ ॥

स्त्रीणां द्विगुण आहारो लज्जा चापि चतुर्गुणा ।
साहसं षड्गुणश्चैव कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥१७॥

दोहा—तिय अहार देखिय द्विगुण, लाज चतुरगुन जान ।
षटगुन तेहि व्यवसाय तिय, काम अष्टगुन मान ॥१७॥

स्त्रियों में पुरुषकी अपेक्षा दूना आहार चौगुनी लज्जा छगुना

साहस और अठगुना काम का वेग रहता है ॥ १७ ॥

इति चाणक्यनीतिदर्पणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

—:o:—

# अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

**अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभिता ।**
**अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां दोषाःस्वभावजाः ॥१॥**

दोहा—अनृत साहस मूढ़ता, कपटरु कृतघन आइ ।
निरदयतारु मलीनता, तियमें सहज रजाइ ॥ १ ॥

झूठ बोलना, एकाएक कोई काम कर बैठना, नखरे करना, मूर्खता करना, ज्यादा लालच रखना, अपवित्र रहना और निर्दयता का बर्ताव करना ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोष हैं ॥ १ ॥

**भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराङ्गना ।**
**विभवो दानशक्तिश्च नाऽल्पस्य तपसः फलम् ॥२॥**

दोहा—सुन्दर भोजन शक्ति रति, शक्ति सदा वर नारि ।
विभव दान की शक्ति यह, बड़ तपफल सुखकारि ॥२॥

भोज्य पदार्थों का उपलब्ध होते रहना, भोजन की शक्ति विद्यमान रहना (अर्थात् स्वास्थ्य में किसी तरह की खराबी न रहना) रतिशक्ति बनी रहना, सुन्दरी स्त्री का मिलना, इच्छानुकूल धन रहना और साथ ही दानशक्ति का भी रहना, ये बातें होना साधारण तपस्या का फल नहीं है। जो अखण्ड तपस्य किये रहता है। उसको ये चीजें उपलब्ध होती हैं ॥ २ ॥

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दानुगामिनी ।
विभवे यश्च सन्तुष्टस्तस्य स्वर्ग इहैव हि ॥३॥

दोहा——सुत आज्ञाकारी जिनहिं, अनुगामिनि तिय जान ।
विभव अलप सन्तोष तेहि, सुर पुर इहाँ पिछान ॥३॥

जिसका पुत्र अपने वश में हो, स्त्री आज्ञाकारिणी हो और जो प्राप्त धन से सन्तुष्ट है, उसके लिये यहाँ ही स्वर्ग है ॥ ३ ॥

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः स पिता यस्तु पोषकः ।
तन्मित्रंयत्रविश्वासःसा भार्या यत्र निर्वृतिः ॥४॥

दोहा——ते सुत जे पितु भक्तिरत, हितकारक पितु होय ।
जेहि विश्वास सो मित्रवर, सुखदायक तिय होय ॥ ४ ॥

वे ही पुत्र, पुत्र हैं जो पिताके भक्त हैं । वही पिता, पिता है, जो अपनी सन्तानका उचित रीति से पालन पोषण करता है । वही मित्र, मित्र है कि जिसपर अपना विश्वास है और वही स्त्री स्त्री है कि जहाँ हृदय आनन्दित होता है ॥ ४ ॥

परोक्षे कार्य्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्ज्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भम्पयोमुखम् ॥५॥

दोहा——ओट कार्य की हानि करि, सम्मुख करै बखान ।
अस मित्रन कहँ दूर तज, विष घट पयमुख जान ॥ ५ ॥

जो पीठ पीछे अपना काम बिगाड़ता हो और मुँहपर मीठी-मीठी बातें करता हो ऐसे मित्र को त्याग देना चाहिए । वह

वैसे ही है जैसे किसी घड़े में गले तक विष भरा हो, किन्तु मुँह पर थोड़ा सा दूध डाल दिया गया हो ।।५।।

न विश्वसेत्कुमित्रे च मित्रं चापि न विश्वसेत् ।
कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वगुह्यं प्रकाशयेत् ।।६।।

दोहा—नहिं विश्वास कुमित्र कर, कीजिय मित्तहु कौन ।
कहहि मित्त कहुँ कोपकरि, गोपहु सब दुख मौन ।।६।।

(अपनी किसी गुप्त बात के विषय में) कुमित्र पर तो किसी तरह विश्वास न करे और मित्र पर भी न करे। क्योंकि हो सकता है कि वह मित्र कभी बिगड़ जाय और सारे गुप्त भेद खोल दे।।६।।

मनसा चिन्तितं कार्यं वचसा न प्रकाशयेत् ।
मंत्रेण रक्षयेद्गूढं कार्यें चापि नियोजयेत् ।।७।।

दोहा—मनते चिंतित काज जो, बैनन ते कहियेन ।
मन्त्र गूढ़ राखिय कहिय, दोष काज सुखदैन ।।७।।

जो बात मनमें सोचे, वह वचन से प्रकाशित न करे। उस गुप्त बात की मन्त्रणा द्वारा रक्षा करे और गुप्त ढंग से ही उसे काम में भी लावे ।।७।।

कष्टञ्च खलु मूर्खत्वं कष्टं च खलुयौवनम् ।
कष्टात् कष्टतरं चैव परगेहे निवासनम् ।।८।।

दोहा—मूरखता अरु तरुणता, हैं दोऊ दुखदाय ।
पर घर बसिबो कष्ट अति, नीति कहत अस गाय ।।८।।

पहला कष्ट तो मूर्ख होना है, दूसरा कष्ट है जवानी और सब कष्टों से बढ़कर कष्ट है, पराये घर में रहना ॥८॥

**शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ।**
**साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥९॥**

दोहा—गिरि गिरि नहिं मानिक गनिय, मौक्तिक न प्रतिगज माहिं ।
सभी ठौर नहिं साधु जन, बन बन चन्दन नाहिं ॥९॥

हर एक पहाड़ पर माणिक्य नहीं होता, सब हाथियों के मस्तक में मुक्ता नहीं होता, सज्जन सर्वत्र नहीं होते और चन्दन सब जंगलों में नहीं होता ॥९॥

**पुत्राश्च विविधैः शीलैर्नियोज्याः सततं बुधैः ।**
**नीतिज्ञाः शीलसम्पन्ना भवन्ति कुलपूजिताः ॥१०॥**

दोहा—चातुरता सुतकू सुपितु, सिखवत वारहिं बार ।
नीतिवन्त बुधवन्त को, पूजत सब संसार ॥१०॥

समझदार मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने पुत्रों को विविध प्रकार के शील की शिक्षा दे । क्योंकि नीति को जानने वाले और शीलवान् पुत्र अपने कुल में पूजित होते हैं ॥१०॥

**माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।**
**न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥११॥**

दोहा—तात मात अरि तुल्यते, सुत न पढ़ावत नीच ।
सभा मध्य शोभत न सो, जिमि बक हंसन बीच ॥११॥

जो माता अपने बेटे को पढ़ाती नहीं, वह शत्रु है। उसी तरह पुत्र को न पढ़ानेवाला पिता पुत्र का बैरी है। क्योंकि (इस तरह माता-पिता की ना समझी से वह पुत्र) सभा में उसी तरह शोभित नहीं होता, जैसे हंसों के बीच में बगुला ॥११॥

**लालनाद् बहवो दोषास्ताडनात् बहवो गुणा: ।**
**तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्नतुलालयेत् ॥१२॥**

दोहा—सुत लालन में दोष बहु, गुण ताड़न ही माहिं ।
तेहि ते सुत अरु शिष्य कूँ, ताड़िय लालिय नाहिं॥१२॥

बच्चों का दुलार करने में दोष है और ताड़न करने में बहुत से गुण हैं। इसलिए पुत्र और शिष्य को ताड़ना अधिक दे, दुलार न करे ॥१२॥

**श्लोकेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धाऽर्द्धाक्षरेण वा ।**
**अवन्ध्यं दिवस कुर्याद्दानाध्ययनकर्मभि: ॥१३॥**

दोहा—सीखत श्लोकहु अरध कै, पावहु अक्षर कोय ।
वृथा गमावत दिवस ना, शुभ चाहत निज सोय ॥१३॥

किसी एक श्लोक या उसके आधे-आधे भाग या आधे के भी आधे भाग का मनन करे। क्योंकि भारतीय महर्षियों का कहना यही है कि जैसे भी हो दान, अध्ययन ( स्वाध्याय ) आदि सब कर्म करके बीतते हुए दिनों को सार्थक करो, इन्हें यों ही न गुज़र न जाने दो ॥१३॥

कान्ता-वियोगः स्वजनापमानो ।
रणस्य शेषः कुनृपस्य सेवा ॥
दरिद्रभावो विषमा सभा च ।
विनाग्निना ते प्रदहन्ति कायम् ॥१४॥

दोहा—युद्ध शेष प्यारी विरह, दरिद बन्धु अपमान ।
दुष्टराज खलकी सभा, दाहत बिनहिं कृशान ॥१४॥

स्त्री का वियोग, अपने जनों द्वारा अपमान, युद्ध में बचा हुआ शत्रु, दुष्ट राजा की सेवा, दरिद्रता और स्वार्थियों की सभा, ये बातें अग्नि के बिना ही शरीर को जला डालती हैं ॥१४॥

नदीतीरे च ये वृक्षाः परगेहेषु कामिनी ।
मंत्रिहीनाश्च राजानः शीघ्रं नश्यन्त्यसंशयम् ॥१५॥

दोहा—तरुवर सरिता तीरपर, निपट निरंकुश नारि ।
नरपति हीन सलाह नित, विनसत लगे न बारि ॥१५॥

नदी के तट पर लगे वृक्ष, पराये घर रहनेवाली स्त्री, बिना मंत्री का राजा, ये शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥

बलं विद्या च विप्राणां राज्ञां सैन्यं बलं तथा ।
बलंवित्तञ्च वैश्यानां शूद्राणां परिचर्यिका ॥१६॥

दोहा—विद्या बल है विप्रको, राजा को बल सैन ।
धन वैश्यन बल शूद्रको, सेवा ही बलदैन ॥१६॥



ब्राह्मणों का बल विद्या है, राजाओं का बल उनकी सेना है,

वैश्यों का बल धन है और शूद्रों का बल द्विजाति की सेवा है।१६।

निर्द्धनं पुरुषं वेश्या प्रजा भग्नं नृपं त्यजेत् ।
खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वाचाभ्यागतोगृहम् ॥१७॥

दोहा——वेश्या निर्धन पुरुष को, प्रजा पराजित राय ।
तजहिं पखेरू निफल तरु, खाय अतिथि चल जाय।१७।

धनविहीन पुरुष को वेश्या, शक्तिहीन राजा को प्रजा, जिसका फल झड़ गया है, ऐसे वृक्ष को पक्षी त्याग देते हैं और भोजन कर लेने के बाद अतिथि उस घर को छोड़ देता है।१७।

गृहीत्वा दक्षिणां विप्रास्त्यजन्ति यजमानकम् ।
प्राप्तविद्यागुरुंशिष्योदग्धारण्यंमृगास्तथा ॥१८॥

दोहा——लेइ दक्षिणा यजमान को, तजि दे ब्राह्मण वर्ग ।
पढ़ि शिष्यन गुरु को तजहिं, हरिन दग्ध बन पर्व ॥१८॥

ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमान को छोड़ देते हैं। विद्या प्राप्त कर लेने के बाद विद्यार्थी गुरुको छोड़ देता है और जले हुए जंगल को बनैले जीव त्याग देते हैं ॥ १८ ॥

दुराचारी दुरादृष्टिर्दुरावासी च दुर्जनः ।
यन्मैत्रीक्रियते पुम्भिर्नरःशीघ्रं विनश्यति ॥१९॥

दोहा——पाप दृष्टि दुर्जन दुराचारी दुर्वस जोय ।
जेहि नर सों मैत्री करत, अवशि नष्ट सो होय ॥१९॥

दुराचारी, व्यभिचारी, दूषित स्थान के निवासी, इन तीन

प्रकार के मनुष्यों से जो मनुष्य मित्रता करता है, उसका बहुत जल्दी विनाश हो जाता है ॥ १९ ॥

**समाने शोभते प्रीतिः राज्ञि सेवा च शोभते ।**
**वाणिज्यंव्यवहारेषु स्त्री दिव्या शोभते गृहे ॥२०॥**

दोहा---सम सों सोहत मित्रता, नृप सेवा सुसोहात ।
बनियाई व्यवहार में, सुन्दरि भवन सुहात ॥२०॥

बराबरवाले के साथ मित्रता भली मालूम होती है । राजा की सेवा अच्छी लगती है व्यवहार में बनियापन भला लगता है और घर के अन्दर स्त्री भली मालूम होती है ॥ २० ॥

इति चाणक्य नीतिदर्पणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

# अथ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

**कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना के न पीडितः ।**
**व्यसनं केन संप्राप्तं कस्य सौख्यंनिरन्तरम् ॥१॥**

दोहा—केहि कुल में दूषण नहीं, व्याधि न काहि सताय ।
कष्ट न भोग्यो कौन जन, सुखी सदा कोउ नाय ॥१॥

किसके कुल नहीं है ? कितने ऐसे प्राणी हैं जो किसी प्रकार के रोगी नहीं हैं ? कौन ऐसा जीव है कि हमेशा जिसे सुख ही सुख मिलता हो ? ॥ १ ॥

आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम् ।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥२॥

दोहा—महत कुलहिं आचार भल, भाषन देश बताय ।
आदर भाषि जनावहि, भोजन देहु शुटाय ॥२॥

मनुष्य का आचरण उसके कुल को बता देता है, उसका भाषण देश का पता दे देता है, उसका आदर भाव प्रेम का परिचय दे देता है और शरीर भोजनका हाल कह देता है ॥२॥

सत्कुले योजयेत्कन्यां पुत्रं विद्यासु योजयेत् ।
व्यसने योजयेच्छत्रुं मित्रं धर्मे नियोजयेत् ॥३॥

दोहा—कन्या ब्याहिय उच्च कुल, पुत्रहिं शास्त्र पढ़ाय ।
शत्रुहिं दुख दीजै सदा, मित्रहिं धर्म सिखाय ॥३॥

मनुष्य का कर्तव्य है कि अपनी कन्या किसी अच्छे खानदान वाले को दे । पुत्र को विद्याभ्यास में लगा दे । शत्रु को विपत्ति में फँसा दे और मित्र को धर्मकार्य में लगा दे ॥३॥

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः ।
सर्पो दंशति काले तु दुर्जनस्तु पदे पदे ॥४॥

दोहा—खलहु सर्प इन दुहुन में, भलो सर्प खल नाहिं ।
सर्प दशत है काल में, खलजन पद पद माहिं ॥ ४॥

दुर्जन और साँप इन दोनों में, दुर्जन की अपेक्षा साँप कहीं अच्छा है । क्योंकि साँप समय पाकर एक ही बार काटता है और दुर्जन पद पद पर काटता रहता है ॥ ४ ॥

एतदर्थं कुलीनानां नृपाः कुर्वन्ति संग्रहम् ।
आदिमध्यावसानेषु न त्यजन्ति च ते नृपम् ॥५॥

दोहा—भूप कुलीनन्ह को कर, संग्रह याही हेत ।
आदि मध्य और अन्त में, नृपहि न ते तजि देत ॥ ५ ॥

राजा लोग कुलीन पुरुषों को अपने पास इसलिए रखते हैं कि जो आदि मध्य और अन्त किसी समय भी राजा को नहीं छोड़ते ॥ ५ ॥

प्रलये भिन्नमर्यादा भवन्ति किल सागराः ।
सागरा भेदमिच्छन्ति प्रलयेऽपि न साधवः ॥६॥

दोहा—मर्यादा सागर तजे, प्रलय होन के काल ।
उत साधू छोड़े नहीं, सदा आपनी चाल ॥ ६ ॥

समुद्र तो प्रलयकाल में अपनी मर्यादा भी भंग कर देते हैं ( उमड़ कर सारे संसार को डुबो देते हैं ) । पर सज्जन लोग प्रलयकाल में भी अपनी मर्यादा का उलंघन नहीं करते हैं ॥६॥

मूर्खस्तु परिहर्त्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः ।
भिद्यते वाक्यशूलेन अदृश्यं कण्टकं यथा ॥७॥

दोहा—मूरख को तजि दीजिये, प्रकट द्विपद पशु जान ।
वचन शल्यते वेधहीं, अद्रहि काँट समान ॥ ७ ॥

मूर्ख को दो पैरवाला पशु समझ कर उसे त्याग ही देना चाहिए । क्योंकि यह समय-समय पर अपने वाक्यरूपी शूल

से उसी तरह वेधता है जैसे न दिखायी पड़ता हुआ काँटा चुभ जाता है ॥७॥

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥८॥

दोहा—संयुत जीवन रूपते, कहिये बड़े कुलीन ।
विद्या बिन शोभत नहीं, पुहुप गंध ते हीन ॥८॥

रूप और यौवन से युक्त, विशाल कुल में उत्पन्न होता हुआ भी विद्याविहीन मनुष्य उसी प्रकार अच्छा नहीं लगता, जैसे सुगन्धित रहित पलास का फूल ॥८॥

कोकिलानां स्वरो रूपं नारीरूपं पतिव्रतम् ।
विद्यारूपं कुरूपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम् ॥९॥

दोहा—रूप कोकिला रव तियन, पतिव्रत रूप अनूप ।
विद्यारूप कुरूप को, क्षमा तपस्वी रूप ॥९॥

कोयल का सौन्दर्य उसकी बोली, स्त्री का सौन्दर्य है उसका पातिव्रत । कुरूप का सौन्दर्य है उसकी विद्या और तपस्वियों का सौन्दर्य है उनकी क्षमाशक्ति ॥९॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥१०॥

दोहा—कुलहित त्यागिय एकहूँ, गृहहु छाड़ि कुल ग्राम ।

जनपद हित ग्रामहि तजिय, तनहित अवनि तमाम ॥१०॥

जहाँ एक के त्यागने से कुल की रक्षा हो सकती हो, वहाँ एक को त्याग दे। यदि कुल के त्यागने से गाँव की रक्षा होती हो तो उस कुल को त्याग दे। यदि उस गाँव के त्यागने से जिले की रक्षा हो तो गाँव को त्याग दे और यदि पृथ्वी के त्यागने से आत्मरक्षा सम्भव हो तो उस पृथ्वी को ही त्याग दे ॥१०॥

**उद्योगे नास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम्।**
**मौनेन कलहो नास्ति नास्ति जागरितो भयम् ॥११॥**

दोहा—नहिं दारिद उद्योग पर, जपते पातक नाहिं।
कलह रहे ना मौन में, नहिं भय जागत माहिं ॥११॥

उद्योग करने पर दरिद्रता नहीं रह सकती। ईश्वर का बार-बार स्मरण करते रहने पर पाप नहीं हो सकता। चुप रहने पर लड़ाई झगड़ा नहीं हो सकता और जागते हुए मनुष्य के पास भय नहीं टिक सकता ॥११॥

**अतिरूपेण वै सीता अतिगर्वेण रावणः।**
**अतिदानाद्बलिर्बद्धो ह्यति सर्वत्र वर्जयेत् ॥१२॥**

दोहा—अति छवि ते सिय हरण भौ, नशि रावण अति गर्व।
अतिहि दान ते बलि बँधे, अति तजिये थल सर्व ॥१२॥

अतिशय रूपवती होने के कारण सीता हरी गई। अतिशय गर्व से रावण का नाश हुआ। अतिशय दानी होने के कारण

बलि को बँधना पड़ा। इसलिये लोगों को चाहिये कि किसी बात में 'अति' न करें ॥१२॥

**कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।**
**को विदेशः सुविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्॥१३॥**

दोहा—उद्योगिन कुछ दूर नहिं, बलिहि न भार विशेष।
प्रियवादिन अप्रिय नहीं, बुधहि न कठिन विदेश॥१३॥

समर्थवाले पुरुष को कोई वस्तु भारी नहीं हो सकती। व्यवसायी मनुष्य के लिए कोई प्रदेश दूर नहीं कहा जा सकता और प्रियवादी मनुष्य किसी का पराया नहीं कहा जा सकता ॥१३॥

**एकेनापि सुवृक्षेण दह्यमानेन गन्धिना।**
**वासितं तद्वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा॥१४॥**

दोहा—एक सुगन्धित वृक्ष से, सब बन होत सुबास।
जसे कुल शोभित अहै, रहि सुपुत्र गुण रास॥१४॥

( वन ) के एक ही फूले हुए और सुगन्धित वृक्ष ने सारे वन को उसी तरह सुगन्धित कर दिया जैसे कोई सपूत अपने कुल की मर्यादा को उज्ज्वल कर देता है ॥१४॥

**एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना।**
**दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा॥१५॥**

दोहा—बल जरत इक तरुहुते, जस लागत बन दाढ़।
कुलका दाहक होत है, तस कुपूत की बाढ़॥१५॥

उसी तरह वनके एक ही सूखे और अग्नि से जलते हुए वृक्ष के कारण सारा वन जल कर खाक हो जाता है जैसे किसी कुपूत के कारण खानदान का खानदान बदनाम हो जाता है ॥१५॥

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना ।
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी ॥१६॥

सोरठा--एकहु सुत जो होय, विद्यायुत अरु साधु चित ।
आनन्दित कुल सोय, यथा चन्द्रमा से निशा ॥१६॥

एक ही सज्जन और विद्वान् पुत्र से सारा कुल आह्लादित हो उठता है जैसे चन्द्रमाके प्रकाशसे रात्रि जगमगा उठती है ॥१६॥

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसन्तापकारकैः ।
वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्राम्यते कुलम् ॥१७॥

दोहा---करनहार सन्ताप सुत, जनमें कहा अनेक ।
देहि कुलहिं विश्राम जो, श्रेष्ठ होय वरु एक ॥१७॥

शोक और सन्ताप देनेवाले बहुत से पुत्रों के होने से क्या लाभ ? अपने कुल के अनुसार चलनेवाला एक ही पुत्र बहुत है कि जहाँ सारा कुल विश्राम कर सके ॥१७॥

लालयेत्पञ्चवर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥१८॥

दोहा--पाँच वर्ष लौं लालिए, दसलौं ताड़न देइ।
सुतहीं सोलह वर्ष में, मित्र सरिस गनि लेइ ॥१८॥

पाँच वर्ष तक बच्चे का दुलार करे। फिर दस वर्ष तक उसे ताड़ना दे, किन्तु सोलह वर्ष के हो जाने पर पुत्र को मित्र के समान समझे ॥१८॥

उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे।
असाधुजनसम्पर्के यः पलायति स जीवति ॥१९॥

दोहा---काल उपद्रव संग सठ, अन्य राज्य भय होय।
तेहि थल ते जो भागिहै, जीवन बचिहै सोय ॥१९॥

दंगा बगैरह खड़ा हो जाने पर, किसी दूसरे राजा के आक्रमण करने पर, भयानक अकाल पड़ने पर और किसी दुष्ट का साथ हो जाने पर, जो मनुष्य भाग निकलता है, वही जीवित रहता है ॥१९॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु यस्यैकोऽपि न विद्यते।
जन्मजन्मनि मर्त्येषु मरणं तस्य केवलम् ॥२०॥

दोहा---धरमादिक चहुँ बरन में, जो हिय एक न धार।
जगत जननि तेहि नरन के, मरिये होत अवार ॥२०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चार पदार्थों में से एक पदार्थ भी जिसको सिद्ध नहीं हो सका, ऐसे मनुष्य का मर्त्य-लोक में बार-बार जन्म केवल मरने के लिए होता है। और किसी काम के लिए नहीं ॥२०॥

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते धान्यं यत्र सुसञ्चितम् ।
दाम्पत्ये कलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता ॥२१॥

दोहा---जहाँ अन्न संचित रहे, मूर्ख न पूजा पाव ।
दंपति में जहँ कलह नहिं, संपति आपुइ आव ॥२१॥

जिस देश में मूर्खों की पूजा नहीं होती, जहाँ भरपूर अन्न का संचय रहता है और जहाँ स्त्री पुरुष में कलह नहीं होता, वहाँ बस यही समझ लो कि लक्ष्मी स्वयं आकर विराज रही हैं ॥२१॥

इति चाणक्ये तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

—:०:—

## अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

आयुः कर्म च वित्तञ्च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥१॥

सोरठा---आयुर्बल औ कर्म, धन विद्या अरु मरण ये ।
नीति कहत अस मर्म, गर्भहि में लिखि जात ये ॥१॥

आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये पाँच बातें तभी लिख दी जाती हैं, जब कि मनुष्य गर्भ में ही रहता है ॥१॥

साधुभ्यस्ते निवर्तन्ते पुत्रमित्राणि बान्धवाः ।
ये च तैः सह गन्तारस्तद्धर्मात्सुकृतं कुलम् ॥२॥

दोहा--बान्धवा जनमा मित्र ये, रहत साधु प्रतिकूल।
ताहि धर्म कुल सुकृत लहु, वो उनके प्रतिकूल ॥२॥

संसार के अधिकांश पुत्र, मित्र और बान्धव सज्जनों से पराङ्मुख ही रहते हैं, लेकिन जो पराङ्मुख न रह कर सज्जनों के साथ रहते हैं, उन्हीं के धर्म से वह कुल पुनीत हो जाता है ॥२॥

**दर्शनाध्यानसंस्पर्शैर्मत्सी कूर्मी च पक्षिणी।**
**शिशुम्पालयते नित्यं तथा सज्जनसङ्गतिः ॥३॥**

दोहा---मच्छी पच्छिनि कच्छपी, दरस परस करि ध्यान।
शिशु पालै नित तैसे हि, सज्जन संग प्रमान ॥३॥

जैसे मछली दर्शन से, कछुई ध्यान से और पक्षिणी स्पर्श से अपने बच्चे का पालन करती है, उसी तरह सज्जनों की संगति मनुष्य का पालन करती है ॥३॥

**यावत्स्वस्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः।**
**तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति ॥४॥**

दोहा--जौलौं देह समर्थ है, जबलौं मरिबो दूरि।
तौलौं आतम हित करै, प्राण अन्त सब धूरि ॥४॥

जब तक कि शरीर स्वस्थ है और जब तक मृत्यु दूर है। इसी बीच में आत्मा का कल्याण कर लो। अन्त समय के उपस्थित हो जाने पर कोई क्या करेगा? ॥४॥

कामधेनुगुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी ।
प्रवासे मातृसदृशी विद्या गुप्तं धनं स्मृतम् ॥५॥

दोहा---बिन औसरहू देत फल, कामधेनु सम नित्त ।
माता सों परदेश में, विद्या संचित वित्त ॥५॥

विद्या में कामधेनु के समान गुण विद्यमान है। ह असमय में भी फल देती है। परदेश में तो यह माता की तरह पालन करती है। इसलिए कहा जाता है िविद्या गुप्त घन है ॥५॥

एकोऽपि गुणवान् पुत्रो निर्गुणैश्च शतैर्वरः ।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च ताराः सहस्रशः ॥६॥

दोहा---स । निगु निथन से अधिक, एक पुत्र सुविचार ।
एक चन्द्र तम को हरे, तारा नहीं हजार ॥६॥

एक गुणवान् पुत्र सैकड़ों गुणहीन पुत्रों से अच्छा है। अकेला चन्द्रमा अन्धकार को दूर कर देता है, पर हजारों तारे मिलकर उसे नहीं दूर कर पाते हैं ॥६॥

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातमृतो वरः ।
मृतः स चाऽल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत् ॥७॥

दोहा---मूर्ख चिरयुन से भलो, जन्मत ही मरि जाय ।
मरे अल्प दुख होइहैं, जिये सदा दुखदाय ॥७॥

मूर्ख पुत्र का चिरजीवी होकर जीना अच्छा नहीं है। बल्कि उससे वह पुत्र अच्छा है, जो पैदा होते ही मर जाय। क्योंकि मरा पुत्र थोड़े दुःख का कारण होता है, पर जीवित मूर्ख पुत्र जन्मभर जलाता ही रहता है ॥७॥

कुग्रामवासः कुलहीनसेवा ।
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या
विनाग्निमेते प्रदहन्ति कायम् ॥८॥

दोहा—घर कुगाँव सुत मूढ़ तिय, कुल नीचनि सेवकाइ ।
मूर्ख पुत्र विधवा सुता, तन बिन अग्नि जराइ ॥८॥

खराब गाँव का निवास, नीच कुलवाले प्रभु की सेवा, खराब भोजन, कर्कशा स्त्री, मूर्ख पुत्र और विधवा पुत्री ये छ बिना आग के ही प्राणी के शरीरको भून डालते हैं ॥८॥

किं तया क्रियते धेन्वा या न दोग्ध्री न गर्भिणी ।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्तिमान् ॥९॥

दोहा—कहा होय तेहि धेनु जो, दूध न गाभिन होय ।
कौन अर्थ वहि सुत भये, पण्डित भक्त न होय ॥९॥

ऐसी गाय से क्या लाभ जो न दूध देती हो और न गाभिन हो । उसी प्रकार उस पुत्र से क्या लाभ, जो न विद्वान् हो और न भक्तिमान् ही होवे ॥९॥

संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रान्तिहेतवः ।
अपत्यं च कलत्रं च सतां सङ्गतिरेव च ॥१०॥

सोरठा—यह तीनों विश्राम, मोह तपन जग ताप में ।
हरे घोर भव घाम, पुत्र नारि सतसंग पुनि ॥१०॥

सांसारिक ताप से जलते हुए लोगों के तीन ही विश्राम स्थल हैं। पुत्र, स्त्री और सज्जनों का संग ॥१०॥

**सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः।**
**सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥११॥**

दोहा—भूपति औ पण्डित बचन, औ कन्या का दान।
एकै एकै बार ये, तीनों होत समान ॥११॥

राजा लोग केवल एक बार कहते हैं, उसी प्रकार पण्डित लोग भी केवल एक ही बार कहते हैं, (आर्यधर्मावलम्बियों के यहाँ) केवल एक ही बार कन्या दी जाती है, ये तीन बातें केवल एक ही बार होती हैं ॥११॥

**एकाकिना तपो द्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः।**
**चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पंचभिर्बहुभी रणम् ॥१२॥**

दोहा—तप एकहि द्वै से पठन, गान तीन मग चारि।
कृषी पाँच रन बहुत मिलु, अस कह शास्त्र विचारि ॥१२॥

अकेले में तपस्या, दो आदमियों से पठन, तीन गायन, चार आदमियों से रास्ता, पाँच आदमियों के संघ से खेती का काम और ज्यादा मनुष्यों के समुदाय द्वारा युद्ध सम्पन्न होता है ॥ १२ ॥

**सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता।**
**सा भार्या या पतिप्रीता सा भार्या सत्यवादिनी ।१३।**

दोहा–सत्य मधुर भाखे वचन, और चतुरशुचि होय।
पति प्यारी और पतिव्रता, त्रिया जानिये सोय ॥१३॥

वही भार्या ( स्त्री ) भार्या है, जो पवित्र, काम-काज करने में निपुण, पतिव्रता, पतिपरायण और सच्ची बात करने वाली हो ॥ १३ ॥

**अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्यास्त्वबांधवाः ।**
**मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्या दरिद्रता ॥ १४ ॥**

दोहा–है अपुत्र का सून घर, बान्धव बिन दिशि सून।
मूरख का हिय सून है, दारिद का सब सून ॥१४॥

जिसके पुत्र नहीं है, उसका घर सूना है। जिसका कोई भाई बन्धु नहीं होता, उसके लिए दिशाएँ शून्य रहती हैं। मूर्ख मनुष्य का हृदय शून्य रहता है और दरिद्र मनुष्य के लिए सारा संसार सूना रहता है ॥ १४ ॥

**अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णे भोजनं विषम् ।**
**दरिद्रस्य विषं गोष्ठी वृद्धस्य तरुणी विषम् ॥१५॥**

दोहा–भोजन विष है बिन पचे, शास्त्र बिना अभ्यास।
सभा गरल सम रंकहीं, बूढ़हिं तरुनी पास ॥१५॥

अनभ्यस्त शास्त्र विष के समान रहता है, अजीर्ण अवस्था में फिर से भोजन करना विष है। दरिद्र के लिए सभा विष है और बूढ़े पुरुष के लिए युवती स्त्री विष है ॥१५॥

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् ।
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निःस्नेहान्बान्धवांस्त्यजेत् १६

दोहा—दया रहित धर्महिं तजै, औ गुरु विद्याहीन ।
क्रोधमुखी प्रिय प्रीति बिनु, बान्धव तजै प्रवीन ॥१६॥

जिस धर्म में दया का उपदेश न हो, वह धर्म त्याग दे । जिस गुरु में विद्या न हो, उसे त्याग दे । हमेशा नाराज रहने वाली को स्त्री त्याग दे और स्नेहविहीन भाईबन्धुओं को त्याग देना चाहिये ॥ १६ ॥

अध्वा जरा मनुष्याणां वाजिनां बन्धनं जरा ।
अमैथुनं जरा स्त्रीणां वस्त्राणामातपं जरा ॥१७॥

दोहा—पन्थ बुराई नरन की, हयन बन्ध इक धाम ।
जरा अमैथुन तियन कहँ, औ वस्त्रन को घाम ॥१७॥

मनुष्यों के लिए रास्ता चलना बुढ़ापा है । घोड़े के लिए बन्धन बुढ़ापा है । स्त्रियों के लिए मैथुन का अभाव बुढ़ापा है । वस्त्रों के लिए घाम बुढ़ापा है ॥१७॥

कः कालः कानि मित्राणि को देशः को व्ययागमौ ।
कस्याहं का च मेशक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥१८॥

दोहा—हौं केहिको का शक्ति मम, कौन काल अरु देश ।
लाभ खर्च को मित्र को, चिन्ता करे हमेश ॥१८॥



यह कैसा समय है, मेरे कौन २ मित्र हैं यह कैसा देश है,

इस समय हमारी क्या आमदनी और क्या खर्च है, मैं किसके अधीन हूँ और मुझमें कितनी शक्ति है इन बातों को बार-बार सोचते रहना चाहिये ॥१८।

**अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम् ।**
**प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनाम् ॥ १९॥**

दोहा—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को, अग्नि देवता और ।
मुनिजन हिय मूरति अबुध, समदर्शिन सब ठौर ॥१९॥

द्विजातियों के लिए अग्नि देवता हैं, मुनियों का हृदय ही देवता है, साधारण बुद्धिवालों के लिए प्रतिमायें ही देवता हैं और समदर्शी के लिये सारा संसार देवमय है ॥१९॥

इति चाणक्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

## अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

—:❀:—

**गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।**
**पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥ १ ॥**

दोहा—अभ्याग [illegible] नार पति जान ।
द्विजन आ [illegible] ई, वरन विप्र गुरु मान ॥१॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों का गुरु अग्नि है । उपर्युक्त चारो वर्णों का गुरु ब्राह्मण है, स्त्री का गुरु उसका पति है और संसार मात्र का गुरु अतिथि है ॥१॥

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निघर्षणं छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते ।
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥ २ ॥

दोहा---आगिताप घसि काटि पिटि, सुवरन लख विधि चारि ।
त्याग शील गुण कर्म तिमि, चारिहि पुरुष विचारि ॥२॥

जैसे रगड़ने से, काटने से, तपाने से और पीटने से, इन चार उपायों से सुवर्ण की परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार त्याग, शील, गुण आर कर्म इन चार बातों से मनुष्य की परीक्षा होती है ॥२॥

तावद्भयेन भेतव्यं यावद् भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं वीक्ष्यं प्रहर्तव्यमशंकया ॥ ३ ॥

दोहा---जौलौं भय आवै नहीं, तौलौं डरे विचार ।
आये शंका छाड़ि के, चाहिय कीन्ह प्रहार ॥३॥

भय से तभी तक डरो, जब तक कि वह तुम्हारे पास तक न आ जाय । और जब आ ही जाय तो डरो नहीं बल्कि उसे निर्भीक भाव से मार भगाने की कोशिश करो ॥३॥

एकोदरसमुद्भूता एकनक्षत्रजातकाः ।
न भवन्ति समाः शीला यथा बदरिकण्टकाः ॥४॥

दोहा——एकहि गर्भ नक्षत्र में, जायमान यदि होय।
नाहिं शील सम होत है, बेर काँट सम होय ॥ ४ ॥

एक पेट से और एक ही नक्षत्र में उत्पन्न होने से किसी का शील एक सा नहीं हो जाता। उदाहरण स्वरूप बेर के काँटों को देखो ॥ ४ ॥

**निःस्पृहो नाधिकारी स्यान्नाकामो मण्डनप्रियः।**
**नाऽविदग्धः प्रियं ब्रूयात् स्पष्टवक्ता न वञ्चकः ॥५॥**

दोहा——नहि निस्पृह अधिकार गहु, भूषण नहिं निहकाम।
नहिं अचतुर प्रिय बोल नहिं, वंचक साफ कलाम ॥५॥

निस्पह मनुष्य कभी अधिकारी नहीं हो सकता। वासना से शून्य मनुष्य शृंगार का प्रेमी नहीं हो सकता। जड़ मनुष्य कभी मीठी वाणी नहीं बोल सकता और साफ-साफ बात करने वाला धोखेबाज नहीं होता ॥५॥

**मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या अधनानां महाधनाः।**
**वरांगना कुलस्त्रीणां सुभगानां च दुर्भगा ॥६॥**

दोहा——मूरख द्वेषी पण्डितहिं, धनहीनहिं धनवान्।
परकीया स्वकियाहु का, विधवा सुभगा जान ॥ ६ ॥

मूर्खों के पण्डित शत्रु होते हैं। दरिद्रों के शत्रु धनी होते हैं। कुलवती स्त्रियों के शत्रु वेश्याएँ होती हैं और सुन्दर मनुष्यों के शत्रु कुरूप होते हैं ॥६॥

आलस्योपगता विद्या परहस्तगतं धनम् ।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम् ॥७॥

दोहा—आलस ते विद्या नशे, धन औरन के हाथ ।
अल्प बीज से खेत अरु, दल दलपति बिनु साथ ॥७॥

आलस से विद्या, पराये हाथ में गया धन, बीज में कमी करने से खेती और सेनापति विहीन सेना नष्ट हो जाती है ।७।

अभ्यासाद्धार्यते विद्या कुलं शीलेन धार्यते ।
गुणेन ज्ञायते त्वार्यः कोपो नेत्रेण गम्यते ॥८॥

दोहा—कुल शीलहिं ते धारिये, विद्या करि अभ्यास ।
गुणते जानहिं श्रेष्ठ कहँ, नयनहिं कोप निवास ॥८॥

अभ्यास से विद्या की और शील से कुल की रक्षा होती है । गुण से मनुष्य पहिचाना जाता है और आँखें देखने से क्रोध का पता लग जाता है ।८॥

वित्तेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृदुना रक्ष्यते भूपः सत्स्त्रिया रक्ष्यते गृहम् ॥९॥

दोहा—विद्या रक्षित योग ते, मृदुता से भूपाल ।
रक्षित गेह सुताय ते, धन ते धर्म विशाल ॥९॥

धन से धर्म की, योग से विद्या की, कोमलता से राजा की और अच्छी स्त्री से घर की रक्षा होती है ।९॥

अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रमाचारमन्यथा ।
अन्यथा वदता शांतं लोकाःक्लिश्यन्तिचाऽन्यथा१०

दोहा—वेद शास्त्र आचार औ, शास्त्रहूँ और प्रकार ।
जो कहते लहते वृथा, लोग क्लेश अपार ॥१०॥

वेद को, पाण्डित्य को, शास्त्र को, सदाचार को, और शान्त मनुष्य को जो लोग बदनाम करना चाहत हैं, वे व्यर्थ कष्ट करते हैं ॥१०॥

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम् ।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी ॥११॥

सोरठा—दारिद नाशन दान, शील दुर्गतिहिं नाशियत ।
बुद्धि नाश अज्ञान, भय नशात है भावना ॥११॥

दान दरिद्रता को नष्ट करता है, शील दुरवस्था को नष्ट कर देता है, बुद्धि अज्ञान को नष्ट कर देती है और विचार भय को नष्ट कर दिया करता है ॥११॥

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः ।
नास्ति कोपसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम् ।१२।

सोरठा—व्याधि न काम समान, रिपु नहिं दूजो मोह सम ।
अग्नि कोप से आन, नहीं ज्ञान से सुख परे ॥१२॥

काम के समान कोई रोग नहीं है; मोह ( अज्ञान ) के समान कोई शत्रु नहीं है, क्रोध के समान और कोई अग्नि नहीं है और ज्ञान से बढ़कर और कोई सुख नहीं है ॥ १२ ॥

जन्ममृत्युं हि यात्येको भुनक्त्येकः शुभाशुभम् ।
नरकेषु पतत्येक एको याति परां गतिम् ॥१३॥

सरोठा--जन्म मृत्यु लहु एक, भोगै हैं इक शुभ अशुभ ।
नरक जात है एक, लहत एक ही मुक्तिपद ॥१३॥

संसार के मनुष्यों में से एक मनुष्य जन्म मरण के चक्कर में पड़ता है, एक अपने शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है, एक नरक में जा गिरता है और एक परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥१३॥

तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणं शूरस्य जीवितम् ।
जिताक्षस्य तृणं नारी निःस्पृहस्य तृणं जगत् ।१४।

दोहा–ब्रह्मज्ञानिहिं स्वर्ग तृन, जित इन्द्रिय तृण नार ।
शूरहिं तृण है जीवनो, निस्पृह कहँ संसार ॥१४॥

ब्रह्मज्ञानी के लिये स्वर्ग तिनके के समान है । बहादुर के लिए जीवन तृण के समान है जितेन्द्रिय को नारी और निस्पृह के लिए सारा संसार तृण के समान है ॥१४॥

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥१५॥

दोहा–विद्या मित्र विदेश में, घर तिय मीत सप्रीत ।
रोगिहिं औषध अरु मरे, धर्म होत ह मीत ॥१५॥

परदेश में विद्या मित्र है, घर में स्त्री मित्र है । रोगी को

औषधि मित्र है और मरे हुए मनुष्य का धर्म मित्र है ॥१५॥

वृथा वृष्टिस्समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम् ।
वृथा दानं धनाढ्येषु वृथा दीपो दीवाऽपि च ॥१६॥

दोहा—व्यर्थहिं वृष्टि समुद्र में, तृप्तहिं भोजन दान ।
धनिकहिं देनों व्यर्थ है, व्यर्थ दीप दीनमान ॥१६॥

समुद्र में वर्षा व्यर्थ है। तृप्त को भोजन व्यर्थ है। धनाढ्य को दान देना व्यर्थ है और दिन के समय दीपक जलाना व्यर्थ है ।।१६॥

नास्ति मेघसमं तोयं नास्ति चात्मसमं बलम् ।
नास्ति चक्षुः समं तेजो नास्ति धान्यसमं प्रियम् ।१७।

दोहा—दूजो जल नहिं मेघ सम, बल नहिं आत्म समान ।
नहिं प्रकाश है नैन सम, प्रिय अनाज सम आन ॥१७।

मेघ जल के समान उत्तम और कोई जल नहीं होता। आत्मबल के समान और कोई बल नहीं है। नेत्र के समान और किसी में तेज नहीं है और अन्न के समान प्रिय कोई वस्तु नहीं है ॥१७॥

अधना धनमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदाः ।
मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः ॥१८॥

दोहा—अधनी धन को चाहते, पशु चाहे वाचाल ।
नर चाहत है स्वर्ग को, सुरगण मुक्ति विशाल ॥१८॥

दरिद्र मनुष्य धन चाहते हैं। चौपाये वाणी चाहते हैं। मनुष्य स्वर्ग चाहते हैं और देवता लोग मोक्ष चाहते हैं ॥१८॥

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥१९॥

दोहा—सत्यहि ते रवि तपत हैं, सत्यहिं पर भुवभार।
चले पवनहू सत्य ते, सत्यहिं सब आधार ॥१९॥

सत्य के आधार पर पृथ्वी रुकी है। सत्य के सहारे सूर्य भगवान् संसार को गर्मी पहुँचाते हैं। सत्य के ही बल पर वायु बहता है। कहने का मतलब यह कि सब कुछ सत्यमें ही है ॥१९॥

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणश्चले जीवितमन्दिरे।
चलाऽचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥२०॥

दोहा—चल लक्ष्मी औ प्राणहू, और जीविका धाम।
यह चलाचल जगत में, अचल धर्म अभिराम ॥२०॥

लक्ष्मी चंचल है, प्राण भी चंचल ही है, जीवन तथा घर द्वार भी चंचल है और कहाँ तक कहें यह सारा संसार चञ्चल है, बस धर्म केवल अचल और अटल है ॥२०॥

नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः।
चतुष्पदां शृगालस्तु स्त्रीणां धूर्ता च मालिनी ॥२१॥

दोहा—नर में नाई धूर्त है, मालिन नारि लखाहिं।
चौपायन में स्यार है, वायस पक्षिन माहिं ॥२१॥

मनुष्यों में नाऊ, पक्षियों में कौआ, चौपायों में स्यार और स्त्रियों में मालिन, ये सब धूर्त होते हैं ।।२१।।

**जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति ।**

**अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः ।।२२।।**

दोहा—पितु आचारज जन्म प्रद, भय रक्षक जो कोय ।
विद्या दाता पाँच यह, मनुज पिता सम होय ।।२२।।

संसार में पिता पाँच प्रकार के होते हैं। ऐसे कि जन्म देने वाला, विद्यादाता, यज्ञोपवीत आदि संस्कार करनेवाला, अन्न देनेवाला और भय से बचानेवाला ।।२२।।

**राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्र-पत्नी तथैव च ।**

**पत्नी-माता स्वमाता च पञ्चैता मातरः स्मृताः।२३।**

दोहा—राजतिय औ गुरु तिय, मित्रतियाहू जान ।
निजमाता और सासु ये, पाँचौं मातु समान ।।२३।।

उसी तरह माता भी पाँच ही तरह की होती हैं। जैसे राजा की पत्नी, गुरु की पत्नी, मित्र की पत्नी, अपनी स्त्री की माता और अपनी खास माता ।।२३।।

इति चाणक्ये पञ्चमोऽध्यायः ।।

# अथ षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम् ।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥१॥

दोहा—सुनिकै जानै धर्म को, सुनि दुर्बुधि तजि देत ।
सुनिकै पावत ज्ञानहू, सुनहुँ मोक्षपद लेत ॥१॥

मनुष्य किसी से सुनकर ही धर्म का तत्व समझता है। सुनकर ही दुर्बुद्धि को त्यागता है। सुनकर ही ज्ञान प्राप्त करता है और सुनकर ही मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है ॥१॥

पक्षिणां काकचाण्डालः पशूनां चैव कुक्कुरः ।
मुनीनां पापी चाण्डालः सर्वचाण्डालनिन्दकः ।२।

दोहा—वायस पक्षिन पशुन महँ, श्वान अहै चंडाल ।
मुनियन में जेहि पाप उर, सबमें निन्दक काल ॥२॥

पक्षियों में चाण्डाल कौआ है, पशुओं में चाण्डाल कुत्ता, मुनियों में चाण्डाल है पाप और सबसे बड़ा चाण्डाल है निन्दक ॥ २ ॥

भस्मना शुध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ।
रजसा शुध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यति ॥३॥

दोहा—काँस होत शुचि भस्म ते, ताम्र खटाई धोइ ।
रजोधर्म ते नारि शुचि, नदी वेग ते होइ ॥३॥

राख से काँसे का बर्तन साफ होता है, खटाई से ताँबा

साफ होता है, रजोधर्म से स्त्री शुद्ध होती है और वेग से नदी शुद्ध होती ।। ३ ।।

भ्रमन्संपूज्यते राजा भ्रमन्संपूज्यते द्विजः ।
भ्रमन्संपूज्यते योगी स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति ।।४।।

दोहा–पूजे जाते भ्रमण से, द्विज योगी औ भूप ।
भ्रमण किये नारी नशे, ऐसी नीति अनूप ।।४।।

भ्रमण करनेवाला राजा पूजा जाता है, भ्रमण करता हुआ ब्राह्मण भी पूजा जाता है और भ्रमण करता हुआ योगी पूजा जाता है, किन्तु स्त्री भ्रमण करने से नष्ट हो जाती ।।४।।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यर्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः।।५।।

दोहा–मित्र और है बन्धु तेहि, सोइ पूरुष गण जात ।
धन है जाके पास में, पण्डित सोइ कहात ।।५।।

जिसके पास धन है उसके बहुत से मित्र हैं, जिसके पास धन है उसके बहुत से बान्धव हैं। जिसके पास धन है वही संसार का श्रेष्ठ पुरुष है और जिसके पास धन है वही पण्डित है ।।५।।

यादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः ।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ।।६।।

दोहा–जैसोई मति होत है, तैसोइ व्यवसाय ।
होनहर जसी रहै, तैसोई मिलत सहाय ।। ६ ।।

जिस तरह की बुद्धि होती है, वैसा ही कार्य होता है और जैसा होनहार होता है, सहायक भी उसी तरह के मिल जाते हैं ॥ ६ ॥

**कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।**
**कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥७॥**

दोहा—काल पचावत जीव सब, करत प्रजन संहार ।
सबके सोवत जागियतु, काल टरै नहिं टार ॥७॥

काल सब प्राणियों को हजम किए जाता है । काल प्रजा का संहार करता है, लोगों के सो जाने पर भी वह जागता रहता है । तात्पर्य यह कि काल को कोई टाल नहीं सकता ॥७॥

**नैव पश्यति जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति ।**
**मदोन्मत्ता न पश्यन्ति अर्थी दोषं न पश्यति ॥८॥**

दोहा—जन्म अन्ध देखै नहीं, काम अन्ध नहिं जान ।
तैसोई मद अन्ध है, अर्थी दोष न मान ॥८॥

न जन्म का अन्धा देखता है, न कामान्ध कुछ देख पाता है और न उन्मत्त पुरुष ही कुछ देख पाता है । उसी तरह स्वार्थी मनुष्य किसी बात में दोष नहीं देख पाता ॥८॥

**स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।**
**स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ॥९॥**

दोहा—जीव कर्म आपै करै' भोगत फलहू आप ।
आप भ्रमत संसार में, मुक्ति लहत है आप ॥९॥

जीव स्वयं कर्म करता है और स्वयं उसका शुभाशुभ फल भोगता है। वह स्वयं संसार में चक्कर खाता है और समय पाकर स्वयं छुटकारा भी पा जाता है ॥९॥

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः।
भर्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्यपापं गुरुस्तथा ॥१०॥

दोहा—प्रजापाप नृप भोगयत, प्रेरित नृप को पाप।
तिय पातक पति शिष्य को, गुरु भोगत है आप ॥१०॥

राज्य के पाप को राजा, राजाका पाप पुरोहित, स्त्रीका पाप पति और शिष्य के द्वारा किए हुये पाप को गुरु भोगता है ॥१०॥

ऋणकर्ता पिता शत्रु माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः ॥११॥

दोहा—ऋणकर्ता पितु शत्रु, पर-पुरुषगामिनि मात।
रूपवती तिय शत्रु है, पुत्र अपंडित जात ॥११॥

ऋण करने वाले पिता, व्यभिचारिणी माता, रूपवती स्त्री और मूर्ख पुत्र, ये मानवजातिके शत्रु हैं ॥११॥

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् स्तब्धमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दानुवृत्या च यथार्थत्वेन पण्डितम् ॥१२॥

दोहा—धनसे लोभी वश करै, गर्विहिं जोरि स्वपान।
मूरख के अनुसरि चलि, बुध जन सत्यकहा न ॥१२॥

लालचीको धनसे, घमण्डी को हाथ जोड़कर, मूर्ख को उसके मनवाली करकेऔर यथार्थ बात से पण्डित को वश में करें ॥१२॥

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं
वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम् ।
वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्यो
वरं न दारा न कुदारदाराः ॥१३॥

दोहा—नहिं कुराज बिनु राज भल, त्यों कुमीतहू मीत ।
शिष्य बिना बरु है भलो, त्यों कुदार कहु नीत ॥१३॥

राज्य ही न हो तो अच्छा, पर कुराज्य अच्छा नहीं । मित्र ही न हो तो अच्छा, पर कुमित्र होना ठीक नहीं । शिष्य ही न हो तो अच्छा, पर कुशिष्य का होना अच्छा नहीं । स्त्री ही न हो तो ठीक है, पर खराब स्त्री का होना अच्छा नहीं ॥१३॥

कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं
कुमित्रमित्रेण कुतोऽभिनिर्वृतिः ।
कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः
कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः ॥१४।

दोहा—सुख कहँ प्रजा कुराजतें, मित्र कुमित्र न प्रेय ।
कहँ कुदारतें गेह सुख, कहँ कुशिष्य यश देय ॥१४॥

बदमाश राजा के राज्य में प्रजा को सुख क्योंकर मिल सकता है । दुष्ट मित्र से भला हृदय कब आनन्दित होगा । दुष्ट स्त्री के रहने पर घर कैसे अच्छा लगेगा और दुष्ट शिष्य को पढ़ा कर यश क्यों कर प्राप्त हो सकेगा ॥१४॥

सिंहादेकं वकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात् ।
वायसात्पञ्च शिक्षेच्चषट् शुनस्त्रीणिगर्दभात् ॥१५॥

दोहा—एक सिंह एक बकन से, अरु मुर्गा तें चारि ।
काक पंच षट् स्वान तें, गर्दभ तें गुन तारि ॥१५॥

सिंह से एक गुण, बगुले से एक गुण, मुर्गे से चार गुण, कौऐ से पाँच गुण, कुत्ते से छ गुण और गधे से तीन गुण ग्रहण करना चाहिए ॥१५॥

प्रभूतं कार्यमपि वा तन्नरः कर्तुमिच्छति ।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते ॥१६॥

दोहा—अति उन्नत कारज कछू, किय चाहत नर कोय ।
करै अनन्त प्रयत्न तें, गहत सिंह गुण सोय ॥१६॥

मनुष्य कितना ही बड़ा काम क्यों न करना चाहता हो, उसे चाहिए कि सारी शक्ति लगा कर वह काम करे । यह गुण सिंह से ले ॥१६॥

इन्द्रियाणि च संयम्य वकवत् पण्डितो नरः ।
देशकालबलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ॥१७॥

दोहा—देशकाल बल जानिके, गहि इन्द्रिय को ग्राम ।
बस जैसे पण्डित पुरुष, कारज करहिं समान ॥१७॥

समझदार मनुष्य को चाहिए कि वह बगुले की तरह चारों ओर से इन्द्रियों को समेटकर और देश काल के अनुसार अपना बल देख कर सब कार्य साधे ॥१७॥

प्रत्युत्थानञ्च युद्धञ्च संविभागञ्च बन्धुषु ।
स्वयमाक्रम्य भुक्तञ्च शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात् ॥१८॥

दोहा—प्रथम उठै रण में जुरै, बन्धु विभागहिं देत ।
स्वोपार्जित भोजन करै, कुक्कुट गुन चहुँ लेत ॥१८॥

ठीक समय से जागना, लड़ना, बन्धुओंके हिस्से का बटवारा और छीन-झपट कर भोजन कर लेना, ये चार बातें मुर्गे से सीखे ॥१८॥

गूढमैथुनचारित्वं काले काले च संग्रहम् ।
अप्रमत्तमविश्वासं पञ्च शिक्षेच्च वायसात् ॥१९॥

दोहा—अधिक ढीठ अरु गूढ़ रति, समय सुआलय सञ्च ।
नहिं विश्वास प्रमाद जेहि, गहु वायस गुन पञ्च ॥१९॥

एकान्त में स्त्री का संग करना, समय-समय पर कुछ संग्रह करते-रहना, हमेशा चौकन्ना रहना और किसी पर विश्वास न करना, ढीठ रहना, ये पाँच गुण कौए से सीखना चाहिए ॥१९॥

बह्वाशी स्वल्पसन्तुष्टः सनिद्रो लघुचेतनः ।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वानतो गुणाः ॥२०॥

दोहा—बहुभुख थोरेहु तोष अति, सोवहि शीघ्र जगात ।
स्वामिभक्त बड़ वीरता, षट्गुन स्वानन हात ॥२०॥

अधिक भूख रहते भी थोड़े में सन्तुष्ट रहना, सोते समय होश ठीक रखना, हल्की नींद सोना, स्वामिभक्ति और बहादुरी ये गुन कुत्ते से सीखना चाहिये ॥२०॥

सुश्रान्तोऽपि वहेत भारं शीतोष्णं न च पश्यति ।
सन्तुष्टश्चरते नित्यं त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात् ॥२१॥

दोहा--भार बहुत थाकत नहीं, शीत उष्ण सम जाहि ।
हिये अधिक सन्तोष गुन, गरदभ तीनि गहाहि ॥ २१॥

भरपूर थकावट रहनेपर भी बोझा ढोना, सर्दी-गर्मी की परवाह न करना, सदा सन्तोष रखकर जीवनयापन करना, ये तीन गुण गधा से सीखना चाहिए ॥२१॥

एतान् विंशतिगुणानाचरिष्यति मानवः ।
कार्यावस्थासु सर्वासु अजेयः स भविष्यति ॥२२॥

दोहा--विंशति सीख विचारि यह, जो नर उर धारंत ।
सो सब नर जीवित अवसि, जय यश जगत लहंत ॥२२॥

जो मनुष्य ऊपर गिनाये बीसों गुणों को अपना लेगा और उसके अनुसार चलेगा, वह सभी कार्य में अजेय रहेगा ॥२२॥

इति चाणक्ये षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

—:०:—

## अथ सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अर्थनाशं मनस्तापं गृहिणीचरितानि च ।
नीचवाक्यं चाऽपमानं मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१॥

दोहा--अरथ नाश मन ताप अरु, दार चरित घर माहिं ।
वंचनता अपमान निज, सुधी प्रकाशत नाहिं ॥१॥

अपने धन का नाश, मन का सन्ताप, स्त्रीका चरित्र, नीच मनुष्य की कही बात और अपना अपमान, इनको बुद्धिमान् मनुष्य किसी के समक्ष जाहिर न करे ॥१॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥२॥

दोहा--संचित धन अरु धान्य कूँ, विद्या सीखत बार ।
करत और व्यवहार कूँ, लाज न करिय अगार ॥२॥

धन-धान्यके लेन-देन, विद्याध्ययन, भोजन, सांसारिक व्यवसाय, इन कामों में जो मनुष्य लज्जा नहीं करता, वही सुखी रहता है ॥२॥

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तिरेव च ।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥ ३ ॥

दोहा--तृपित सुधा सन्तोष चित, शान्त लहत सुख होय ।
इतउत दौड़त लोभ धन, कहँ सो सुख तेहि होय ॥३॥

सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त मनुष्यों को जो सुख और शांति प्राप्त होती है, वह धन के लोभ से इधर-उधर मारे-मारे फिरने वालोंको कैसे प्राप्त होगी ? ॥३॥

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु चैव न कर्त्तव्योऽध्ययने जपदानयोः ॥ ४ ॥

दोहा--तीन ठौर सन्तोष धर, तिय भोजन धन माहिं ।
दानन में अध्ययन में, जप में कीजे नाहिं ।।४।।

तीन बातों में सन्तोष धारण करना चाहिए । जैसे-अपनी स्त्री में, भोजनमें और धनमें । इसी प्रकार तीन बातोंमें कभी भी सन्तुष्ट न होना चाहिए । अध्ययनमें, जप में और दान में ।।४।।

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योः स्वामिभृत्ययोः ।
अन्तरेण न गन्तव्यं हलस्य वृषभस्य च ।।५।।

दोहा---विप्र विप्र अरु नारि नर, सेवक स्वामिहिं अन्त ।
हल औ बैल के मध्यते, नहिं जावे सुखवन्त ।।५।।

दो ब्राह्मणों के बीच में से, ब्राह्मण और अग्नि के बीच से, स्वामी और सेवक के बीच से, स्त्री-पुरुष के बीच से और हल तथा बैल के बीच से नहीं निकलना चाहिए ।।५।।

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरुं ब्राह्मणमेव च ।
नैव गां च कुमारीं च वृद्धं च न शिशुं तथा ।।६।।

दोहा---अनल विप्र गुरु धेनु पुनि, कन्या कुँआरी देत ।
बालक के अरु वृद्ध के, पग न लगावहु येत ।।६।।

अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गौ, कुमारी कन्या, वृद्ध और बालक इनको कभी पैरों से न छुए ।।६।।

हस्ती हस्तसहस्रेण शतहस्तेन वाजिनः ।
शृङ्गिणो दशहस्तेन देशत्यागेन दुर्जनः ।।७।।

दोहा--हस्ती हाथ हजार तज, शत हाथ से वाजि ।
भृङ्ग सहित तेहि हाथ दश, दुष्ट देश तज भाजि ।।७।।

हजार हाथ की दूरी से हाथी से, सौ हाथ की दूरी से घोड़ा से, दस हाथ की दूरी से सींगवाले जानवरों से बचना चाहिये और मौका पड़ जाय तो देश को ही त्याग कर दुर्जन से बचे ॥७॥

**हस्ती अंकुशमात्रेण बाजी हस्तेन ताडयते ।**
**शृङ्गी लकुटहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जनः ॥८॥**

दोहा—हस्ती अंकुश तै हनिय, हाथ से पकरि तुरंग ।
शृङ्गि पशुन को लकुटतैं, असितैं दुर्जन भंग ॥८॥

हाथी अंकुश से, घोड़ा चाबुक से, सींगवाले जानवर लाठी से और दुर्जन तलवार से ठीक होते हैं ॥८॥

**तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूरा घनगर्जिते ।**
**साधवः परसम्पत्तौ खलाः परविपत्तिषु ॥९॥**

दोहा—तुष्ट होत भोजन किये, ब्राह्मण लखि घन मोर ।
पर सम्पति लखि साधु जन, खल लखि पर दुःख घोर ॥९॥

ब्राह्मण भोजन से, मोर मेघ के गर्जन से, सज्जन पराये धन से और खल मनुष्य दूसरे पर आई विपत्ति से प्रसन्न होता है ॥९॥

**अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्जनम् ।**
**आत्मतुल्यबलं शत्रुः विनयेन बलेन वा ॥१०॥**

दोहा—बलवंतहिं अनुकूलहीं, प्रतिकूलहिं बलहीन ।
आतम बल सम शत्रुको, विनय बसहिं वश कीन ॥१०॥

अपने से प्रबल शत्रु को उसके अनुकूल चल कर, दुष्ट शत्रु को उसके प्रतिकूल चल कर और समान बलवाले शत्रु को विनय और बल से नीचा दिखाना चाहिए ॥१०॥

बाहुवीर्यबलं राज्ञो ब्राह्मणां ब्रह्मवित्बली ।
रूप-यौवन-माधुर्यं स्त्रीणां बलमनुत्तमम् ॥११॥

दोहा--नृपहिं बाहुबल ब्राह्मणहिं, वेद ब्रह्म को जान ।
तिय बल माधुरता कह्यो, रूप शील गुणवान ॥११॥

राजाओं में बाहुबल सम्पन्न राजा और ब्राह्मणों में ब्रह्म-ज्ञानी ब्राह्मण बली होता है और रूप तथा यौवन की मधुरता स्त्रियों का सबसे उत्तम बल है ॥११॥

नाऽत्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वनस्थलीम् ।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः॥१२॥

दोहा---अतिहि सरल नहिं होइये, देखहु जा बनमाहिं ।
तरु सीधे छेदत तिनहिं, बाँके तरु रहि जाहिं ॥१२॥

अधिक सीधा-सादा होना भी अच्छा नहीं होता । जाकर वन में देखो---यहाँ सीधे वृक्ष काट लिये जाते हैं और टेढ़े खड़े रह जाते हैं ॥१२॥

यत्रोदकस्तत्र वसन्ति हंसा--
स्तथैव शुष्कं परिवर्जयन्ति ।
न हंसतुल्येन नरेण भाव्यं
पुनस्त्यजन्तः पुनराश्रयन्तः ॥ १३ ॥

दोहा-- सजल सरोवर हंस बसि, सूखत उड़िहैं सोउ ।
देखि सजल आवत बहुरि, हंस समान न होउ ॥१३॥

जहाँ जल रहता है वहाँ ही हंस बसते हैं । वैसे ही सूखे

सरोवरको छोड़ते हैं और बार-बार आश्रय कर लेते हैं। सो मनुष्य को हंस के समान न होना चाहिये।

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्।
तडागोदरसंस्थानां परीस्रव इवाम्भसाम् ॥१४॥

दोहा---धन संग्रहको पेखिये, प्रगट दान प्रतिपाल।
जो मोरी जल जानकूँ, तब नहिं फूटत ताल ॥१४॥

अर्जित धनका व्यय करना ही रक्षा है। जैसे नये जल आने पर तड़ाग के भीतर के जल को निकालना ही रक्षा है ॥१४॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाःस पुमाँल्लोके यस्यार्थाः सचजीवति ॥१५॥

दोहा---जिनके धन तेहि मीत बहु, जेहि धन बन्धु अनन्त।
धन सोइ जग में पुरुषवर, सोई जन जीवन्त ॥१५॥

जिनके धन रहता है उसके मित्र होते हैं, जिसके पास अर्थ रहता है उसी के बंधु होते हैं। जिसके धन रहता है वही पुरुष गिना जाता है, जिसके अर्थ है वही जीता है ॥१५॥

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके
चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे।
दानप्रसंगो मधुरा च वाणी
देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ॥ १६ ॥

दोहा---स्वर्गवासि जन के सदा, चार चिह्न लखि येहि।
देव विप्र पूजा मधुर, वाक्य दान करि देहि ॥१६॥

संसार में आने पर स्वर्ग स्थानियों के शरीर में चार चिह्न रहते हैं, दान का स्वभाव, मीठा वचन, देवता की पूजा, ब्राह्मण को तृप्त करना अर्थात् जिन लोगों में दान आदि लक्षण रहे उनको जानना चाहिये कि वे अपने पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग वासी मृत्यु लोक में अवतार लिये हैं ॥१६॥

अत्यन्तकोपः कटुता च वाणी
दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम् ।
नीचप्रसङ्ग कुलहीनसेवा
चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम् ॥१७॥

दोहा--अतिहि कोप कटु वचनहूँ, दारिद नीच मिलान ।
स्वजन वैर अकुलिन टहल, यह षट नर्क निशान ॥१७॥

अत्यन्त क्रोध, कटुवचन, दरिद्रता, अपने जनोंमें वैर, नीचका संग, कुलहीनकी सेवा, ये चिह्न नरकवासियोंकी देहोंमें रहतेहैं।१७।

गम्यते यदि मृगेन्द्रमन्दिरं
लभ्यते करिकपोलमौक्तिकम् ।
जम्बुकालयगते च प्राप्यते ।
वत्सपुच्छखरचर्मखण्डनम् ॥ १८ ॥

दोहा--सिंह भवन यदि जाय कोउ, गजमुक्ता तहँ पाय ।
वत्सपूँछ खर चर्म टुक, स्यार माँद हा जाय ॥१८॥

यदि कोई सिंह की गुफा में जा पड़े तो उसको हाथी के कपोलका मोती मिलता है और सियारके स्थानमें जाने पर बछवे की पूँछ और गदहे के चमड़े का टुकड़ा मिलता है ॥१८॥

**श्वानपुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना ।**
**न गुह्यगोपने शक्तं न च दंशनिवारणे ॥१९॥**

दोहा---श्वान पूँछ सम जीवनो, विद्या बिनु है व्यर्थ ।
दंश निवारन तन ढँकन, नहिं एको सामर्थ ॥१९॥

कुत्ते की पूँछ के समान विद्या बिना जीना व्यर्थ है । कुत्ते की पूँछ न तो गोप्य इन्द्रिय को ढाँक सकती और न मच्छड़ आदि जीवों को ही उड़ा सकती है ॥१९॥

**वाचां शौचं च मनसः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।**
**सर्वभूते दया शौचमेतच्छौचं परार्थिनाम् ॥२०॥**

दोहा---वचनशुद्धि मनशुद्धि औ, इन्द्रिय संयम शुद्धि ।
भूतदया और स्वच्छता, पर अर्थिन यह शुद्धि ॥२०॥

वचन की शुद्धिसे मन की शुद्धि, इन्द्रियों का संयम, जीवों पर दया और पवित्रता---ये परमार्थियों की शुद्धि है ॥२०॥

**पुष्पे गन्धं तिले तैलं काष्ठे वह्निं पयो घृतम् ।**
**इक्षौ गुडं तथा देहे पश्याऽऽत्मानं विवेकतः ॥२१॥**

दोहा---बास सुमन तिल तेल, अग्नि काठ पय घीव ।
ऊखहिं गुड़ तिमि देह में, आतम लखु मति सीव ॥२१॥

जैसे फूलमें गन्ध, तिलमें तेल, काष्ठमें आग, दूधमें घी और ईख में गुड़ है वैसे ही देह में आत्मा को विचार से देखो ॥२१॥

इति चाणक्ये सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



:—:

# अथ अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥१॥

दोहा—अधम धनहिं को चाहते, मध्यम धन अरु मान ।
मानहि धन है बड़न को, उत्तम चाहैं मान ॥१॥

अधम धन चाहते हैं, मध्यम धन और मान दोनों, पर उत्तम मानही चाहते हैं। क्योंकि महात्माओं का धन मान ही है ॥१॥

इक्षुरापः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वाऽपिकर्तव्याःस्नानदानादिकाःक्रियाः॥२॥

सोरठा—ऊख वारि पय मूल, पुनि औषधहू खायके ।
तथा खाय ताम्बूल, स्नान दान आदिक उचित ॥२॥

ऊख, जल, दूध, पान, फल और औषधि इन वस्तुओं के भोजन करने पर भी स्नान दान आदि क्रिया कर सकते हैं ॥२॥

दीपो भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते ।
यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजा ॥३॥

दोहा—दीपक तमको खात है, तो कज्जल उपजाय ।
अन्न जैसेही खाय जो, तैसहि सन्तति पाय ॥३॥

दीपक अंधकारको खाता है और काजलको जन्माता है। सत्य है, जो जैसा अन्न सदा खाता है उसकी वैसे ही सन्तति होती है॥३॥

वित्तंदेहि गुणान्वितेषु मतिमन्नाऽन्यत्रदेहि क्वचित्।
प्राप्तं वारिनिधेर्जलं घनमुचां माधुर्ययुक्तं सदा

जीवाः स्थावरजङ्गमाश्च सकला संजीव्य भूमण्डलम् ।
भूयः पश्य तदेवकोटिगुणितंगच्छत्यमम्भोनिधिम् ।।४।।

दोहा---गुणिहिं न औरहिं देइ धन, लखिय जलद धन खाय ।
मधुर कोटि गुण करि जगत, जीवन जलनिधि जाय ।।४।।

हे मतिमान् ! गुणियों को धन दो औरों को कभी मत दो । समुद्र से मेघ के मुख में प्राप्त होकर जल सदा मधुर हो जाता है और पृथ्वी पर चर-अचर सब जीवों को जिला कर फिर वही जल कोटि गुण होकर उसी समुद्र में चला जाता है ।।४।।

चाण्डालानां सहस्रैश्च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
एको हि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात्परः ।।५।।

दोहा—एक सहस्र चाण्डाल सम, यवन नीच इक होय ।
तत्त्वदर्शी कह यवन ते, नीच और नहिं कोय ।।५।।

तत्वदर्शी विद्वानों की राय है कि सहस्रों चाण्डालों के इतना नीच एक यवन होता है । यवन से बढ़कर नीच कोई नहीं होता ।।५।।

तैलाभ्यङ्गे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि ।
तावद् भवति चाण्डालो यावत्स्नानं न चाचरेत् ।।६।।

दोहा—चिताधूम तनुतेल लगि, मैथुन छौर बनाय ।
तब लौं है चण्डाल सम, जबलौं नाहिं नहाय ।।६।।

तेल लगाने पर, स्त्री प्रसंग करने के बाद और चिता का धुआँ लग जाने पर मनुष्य जब तक स्नान नहीं करता तब तक चाण्डाल रहता है ।।६।।

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम् ।
भोजने चाऽमृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम् ॥७॥

दोहा--वारि अजीरण औषधी, जीरण में बलवान ।
भोजन के संग अमृत है, भोजनान्त विषपान ॥७॥

जब तक कि भोजन पच न जाय, इस बीच में पिया हुआ पानी विष है और वही पानी भोजन पच जाने के बाद पीने से अमृत के समान हो जाता है । भोजन करते समय जल अमृत और उसके पश्चात् विषका काम करता है ॥७॥

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाऽज्ञानतो नरः ।
हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः ॥८॥

दोहा--ज्ञान क्रिया बिन नष्ट है, नर जो नष्ट अज्ञान ।
बिन नायक जसु सैनहू, त्यों पति बिनु तिय जान ॥८॥

वह ज्ञान व्यर्थ है कि जिसके अनुसार आचरण न हो और उस मनुष्य का जीवन ही व्यर्थ है कि जिसे ज्ञान प्राप्त न हो। जिस सेना का कोई सेनापति न हो वह सेना व्यर्थ है और जिसके पति न हो वे स्त्रियाँ व्यर्थ हैं ॥८॥

वृद्धकाले मृता भार्या बन्धुहस्ते गतं धनम् ।
भोजनं च पराधीनं त्रयः पुंसां विडम्बनाः ॥९॥

दोहा--वृद्ध समय जो मरु तिया, बन्धु हाथ धन जाय ।
पराधीन भोजन मिलै, अहै तीन दुखदाय ॥९॥

बुढ़ौती में स्त्री का मरना, निजी धन का बन्धुओं के हाथ में चला जाना और पराधीन जीविका रहना, ये पुरुषों के लिए अभाग्य की बात है ॥९॥

**अग्निहोत्रं विना वेदाः न च दानं विना क्रियाः ।**
**न भावेन विना सिद्धिस्तस्माद्भावो हि कारणम् ।।१०।।**

दोहा--अग्निहोत्र बिनु वेद नहिं, यज्ञ क्रिया बिनु दान ।
भाव बिना नहिं सिद्धि है, सबमें भाव प्रधान ।।१०।।

बिना अग्निहोत्र के वेदपाठ व्यर्थ है और दान के बिना यज्ञादि कर्म व्यर्थ हैं। भाव के बिना सिद्धि नहीं प्राप्त होती इसलिए भाव ही प्रधान है ।।१०।।

**न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये ।**
**भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ।।११।।**

दोहा--देव न काठ पाषाणमृत, मूर्ती में न रहाय ।
भाव तहाँही देवबल, कारन भाव कहाय ।।११।।

देवता न काठ में, न पत्थर में और न मिट्टी ही में रहते हैं वे तो रहते हैं भाव में। इससे यह निष्कर्ष निकला कि भाव ही सबका कारण है ।।११।।

**काष्ठ-पाषाण-धातूनां कृत्वा भावेन सेवनम् ।**
**श्रद्धया च तथा सिद्धिस्तस्य विष्णोः प्रसादतः ।।१२।।**

दोहा--धातु काठ पाषाण का, करु सेवन युत भाव ।
श्रद्धा से भगवत्कृपा, तैसे तेहि सिद्धि आव ।।१२।।

काठ, पाषाण तथा धातु की भी श्रद्धापूर्वक सेवा करने से और भगवत्कृपा से सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।।१२।।

**शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम् ।**
**न तृष्णया परो व्याधिर्न च धर्मो दया परः ।।१३।।**

दोहा—नहीं सन्तोष समान सुख, तप न क्षमा सम आन ।
तृष्णा सम नहिं व्याधि तन, धरम दया सम मान ॥१३॥

शान्ति के समान कोई तप नहीं है, सन्तोष से बढ़कर कोई सुख नहीं है, तृष्णा से बड़ी कोई व्याधि नहीं है और दया से बड़ा कोई धर्म नहीं है ॥१३॥

**क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी ।**
**विद्या कामदुघा धेनुः सन्तोषो नन्दनं वनम् ॥१४॥**

दोहा—त्रिसना वैतरणी नदी, धरमराज सह रोष ।
कामधेनु विद्या कहिय, नन्दन वन सन्तोष ॥१४॥

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गौ है और सन्तोष नन्दन वन है ॥१४॥

**गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम् ।**
**सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनम् ॥१५॥**

दोहा—गुन भूषन है रूप को, कुल को शील कहाय ।
विद्या भूषन सिद्धि जन, तेहि खरचत सो पाय ॥१५॥

गुण रूप का श्रृङ्गार है, शील कुलका भूषण है, सिद्धि विद्या का अलंकार है और भोग धन का आभूषण है ॥१५॥

**निर्गुणस्य हतं रूपं दुःशीलस्य हतं कुलम् ।**
**असिद्धस्य हता विद्या अभोगेन हतं धनम् ॥१६॥**

दोहा—निर्गुण का हत रूप है, हत कुशील कुलगान ।
हत विद्याइ असिद्धको, हत अभोग धन धान ॥१६॥

गुण विहीन मनुष्य का रूप व्यर्थ है, जिसका शील ठीक

नहीं उसका कुल नष्ट है, जिसको सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकी उसकी विद्या व्यर्थ है और जिसका भोग न किया जाय वह धन व्यर्थ है ॥१६॥

**शुद्धं भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता ।**
**शुचिः क्षेमकरो राजा सन्तोषी ब्राह्मणः शुचिः ॥१७॥**

दोहा—शुद्ध भूमिगत वारि है, नारि पतिव्रता जौन ।
क्षेम करै सो भूप शुचि, विप्र तोस सुचि तौन ॥१७॥

जमीन पर पहुँचा पानी, पतिव्रता स्त्री, प्रजा का कल्याण करनेवाला राजा और सन्तोषी ब्राह्मण—ये पवित्रमाने गये हैं ॥१७॥

**असंतुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाश्च महीभृतः ।**
**सलज्जागणिकानष्टाःनिर्लज्जाश्च कुलांगनाः ॥१८॥**

दोहा—असन्तोष ते विप्र हत, नृत्प सन्तोष तै रव्वारि ।
गनिका विनशे लाज ते, लाज बिना कुल नारि ॥१८॥

असन्तोषी ब्राह्मण, सन्तोषी राजे, लज्जावती वेश्या और निर्लज्ज कुल-स्त्रियाँ से निकृष्ट माने गये हैं ॥१९॥

**किं कुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहिनाम् ।**
**दुष्कुलं चापि विदुषो देवैरपि हि पूज्यते ॥१६॥**

दोहा—कहा होत बड़ वंश ते, जो नर विद्या हीन ।
प्रगट सुरनतैं पूजियत, विद्या ते कुलहीन ॥१९॥

यदि मूर्ख का कुल बड़ा भी हो तो उससे क्या लाभ ? चाहे नीच ही कुल का क्यों न हो, पर यदि वह विद्वान् हो तो देवताओं द्वारा भी पूजा जाता है ॥१९॥

विद्वान् प्रशस्यते लोके विद्वान्सर्वत्र गौरवम् ।
विद्यया लभते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते ॥२०॥

दोहा—विदुष प्रशंसित होत जग, सब थल गौरव पाय ।
विद्या से सब मिलत है, थल सब सोइ पुजाय ॥२०॥

विद्वान् का संसार में प्रचार होता है वह सर्वत्र आदर पाता है । कहने का मतलब कि विद्या से सब कुछ प्राप्त हो सकता है और सर्वत्र विद्या ही पूजी जाती है । २०॥

रूपयौवनसंपन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥२१॥

दोहा—संयत जीवन रूप तें, कहियत बड़े कुलीन ।
विद्या बिन सोभै न जिमि, पुहुप गंध ते हीन ॥२१॥

रूप यौवन युक्त और विशाल कुल में उत्पन्न होकर भी मनुष्य यदि विद्याहीन होते हैं तो वे उसी तरह भले नहीं मालूम होते जैसे सुगन्धि रहित टेसू के फूल ॥२१॥

मांसभक्षैः सुरापानैः मूर्खैश्चाऽक्षरवर्जितैः
पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराक्रान्ताऽस्ति मेदिनी ॥२२॥

दोहा—मांस भक्ष मदिरा पियत, मूरख अक्षर हीन ।
नरकार पशुभार गृह, पृथ्वी नहि सहु तीन ॥२२॥

मांसाहारी, शराबी और निरक्षर मूर्ख इन मानवरूधारी पशुओं से पृथ्वी मारे बोझ के दबी जा रही है ॥२२॥

अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मंत्रहीनश्च ऋत्विजः ।
यजमानं दानहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥२३॥

दोहा—अन्नहीन राज्यहीं दहत, दानहीन यजमान।
मन्त्रहीन ऋत्विजन कहँ, क्रतुसम रिपु नहिं आन ॥२३॥

अन्नरहित यज्ञ देश का, मन्त्रहीन यज्ञ ऋत्विजों का और दान विहीन यज्ञ यजमान का नाश कर देता है। यज्ञ के समान कोई शत्रु नहीं है ॥२३॥

इति चाणक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

--:※:—

# अथ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

**मुक्तिमिच्छसि चेत्तात ! विषयान् विषवत्त्यज ।**
**क्षमाऽऽर्जवं दया शौचं सत्यं पीयूषवत्पिब ॥१॥**

सो०—मुक्ति चहो जो तात ! विषय तजह् विष सरिस।
दयाशील सच बात, शौच सरलता क्षमा गहु ॥१॥

हे भाई ! यदि तुम मुक्ति चाहते हो विषयों को विष के समान समझ कर त्याग दो और क्षमा, ऋजुता ( कोमलता ), दया और पवित्रता इनको अमृत की तरह पी जाओ ॥१॥

**परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमाः ।**
**त एव विलयं यान्ति वल्मीकोदरसर्पवत् ॥२॥**

दोहा—नीच अधम नर भाषते, मर्म परस्पर आप।
ते विलाय जै हैं यथा, सँधि बिमवट को साँप ॥२॥

जो लोग आपस के भेद की बात बतला देते हैं वे नराधम उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जैसे बाँबी के भीतर घुसा साँप ॥२॥

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदंडे—
नाऽकारि पुष्पं खलु चन्दनस्य ।
विद्वान् धनी भूपतिदीर्घजीवी
धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत ॥३॥

दोहा—गन्ध सोन फल इक्षु धन, बुध चिरायु नरनाह ।
सुमन मलय धाता न किय, काहु ज्ञान गुरुनाह ॥३॥

सोने में सुगंध, ऊँख में फल, चन्दन में फूल, धनी विद्वान् और दीर्घजीवी राजा को विधाता ने बनाया ही नहीं। क्या किसी ने उन्हें सलाह भी नहीं दी ? ॥३॥

सर्वौषधीनाममृतं प्रधानम्
सर्वेषु सौख्येष्वशनं प्रधानम् ।
सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं
सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥४॥

दोहा—गुरुच औषधि सुखन में, भोजन कहो प्रमान ।
चक्षु इन्द्रिय अंग में, शिर प्रधान भी जान ॥४॥

सब औषधियों में अमृत (गुरुच = गिलोय) प्रधान है, सब सुखों में भोजन प्रधान है, सब इन्द्रियों में नेत्र प्रधान है और सब अंगों में मस्तक प्रधान है ॥४॥

दूतो न सञ्चरति खे न चलेच्च वार्त्ता ।
पूर्वं न जल्पितमिदं न च सङ्गमोऽस्ति ।
व्योम्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं

जानाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान् ॥५॥

दोहा—दूर वचन गति रंग नहिं, नभ न आदि कहुँ कोय।
शशि रवि ग्रहण बखानु जो, नहिं न विदुष किमि होय॥५॥

आकाश में न कोई दूत जा सकता है, न बातचीत ही हो सकती है, न पहले से किसी ने बता रखा है, न किसी से भेंट ही होती है, ऐसी परिस्थति में आकाशचारी सूर्य, चन्द्रमा का ग्रहण समय जो पण्डित जानते हैं, वे क्यों कर विद्वान् न माने जायँ ? ॥५॥

विद्यार्थी सेवकः पान्थः क्षुधार्तो भयकातरः।
भाण्डारी प्रतिहारी च सप्त सुप्तान् प्रबोधयेत् ॥६॥

दोहा—द्वारपाल सेवक पथिक, समय क्षुधातुर पाय।
भंडारी, विद्यारथी, सोअत सात जगाय ॥६॥

विद्यार्थी, नौकर, राही, भूखे, भयभीत, भंडारी और द्वारपाल इन सात सोते हुए को भी जगा देना चाहिए ॥६॥

अहिं नृपं च शार्दूलं बरिंट बालकं तथा।
परश्वानं च मूर्खं च सप्त सुप्तान्न बोधयेत् ॥७॥

दोहा--भूपति मृगपति मढ़मति, त्यों बर्रें औ बाल।
सोवत सात जगाइये, नहिं पर कूकर व्याल ॥७॥

साँप, राजा, शेर, बर्रें, बालक, पराया कुत्ता और मूर्ख मनुष्य ये सात सोते हों तो इन्हें न जगावें ॥७॥

अर्थाधीताश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्नभोजिनः।
ते द्विजाः किं करिष्यन्ति निर्विषा इव पन्नगाः ॥८॥

दोहा--अर्थहेत वेदहिं पढ़े, खाय शूद्र को धान।
ते द्विज क्या कर सकत हैं, विन विष व्याल समान ॥८॥

जिन्होंने धनके लिए विद्या पढ़ी है और शूद्र का अन्न खाते हैं, ऐसे विषहीन साँप के समान ब्राह्मण क्या कर सकेंगे ॥८॥

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनागमः।
निग्रहाऽनुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ॥९॥

दोहा--रुष्ट भये भय तुष्ट में, नहीं धनागम होय।
दण्ड सहाय न करि सकै, का रिसाय करु सोय ॥९॥

जिसके नाराज होने पर कोई डर नहीं है, प्रसन्न होने पर कुछ आमदनी नहीं हो सकती। न वह दे सकता और न कृपा ही कर सकता हो तो उसके रुष्ट होने से क्या होगा? ॥९॥

निर्विषेणापि सर्पेण कर्त्तव्या महती फणा।
विषमस्तु न वाप्यस्तु घटाटोपो भयंकरः ॥१०॥

दोहा—विन विषहू के साँप सो, चाहिय फने बढ़ाय।
होउ नहीं या होउ विष, घटाटोप भयदाय ॥१०॥

विष विहीन सर्प को भी चाहिये कि वह खूब लम्बी चौड़ी फन फटकारे। विष हो या न हो, पर आडम्बर होना ह चाहिये ॥१०॥

प्रातर्द्यूतप्रसंगेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसंगतः।
रात्रौ चौरप्रसंगेन कालो गच्छति धीमताम् ॥११॥

दोहा—प्रातः द्यूत प्रसग से, मध्य स्त्री परसंग।
सायं चोर प्रसंग कह, काल कहे सब अङ्ग ॥११॥

समझदार लोगों का समय सबेरे जुए के प्रसंग (कथा) में, दोपहर को स्त्री प्रसंग (कथा) में और रात को चोर की चर्चा में जाता है। यह तो हुआ शब्दार्थ, पर भावार्थ इसका यह है जो समझदार होते हैं, वे सबेरे यह कथा कहते सुनते हैं कि जिसमें जुए की कथा आती है यानी महाभारत। दोपहर को स्त्री प्रसंग यानी स्त्री से सम्बन्ध रखनेवाली कथा अर्थात् रामायण कि जिसमें आदि से अंत तक सीता की तपस्या झलकती रहती है। रात को चोर के प्रसंग अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र की कथा यानी श्रीमद्भागवत कहते सुनते हैं ॥११॥

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्ताद् घृष्टचन्दनम् ।
स्वहस्तलिखितस्तोत्रं शक्रस्यापि श्रियं हरेत ॥१२॥

दोहा—सुमन माल निजकर रचित, स्वलिखित पुस्तक पाठ।
धन इन्द्रहु नाशै दिये, स्वघसित चन्दन काठ ॥१२॥

अपने हाथ गूँथकर पहनी माला, अपने हाथ से घिस कर लगाया चन्दन और अपने हाथ लिखकर किया हुआ स्तोत्रपाठ इन्द्र की भी श्री को नष्ट कर देता है ॥१२॥

इक्षुदंडास्तिलाः शूद्राः कान्ता कांचनमेदिनी ।
चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं गुणवर्द्धनम् ॥१३॥

दोहा—ऊख शूद्र दधि नायिका, हेम मेदिनी पान।
तिल चन्दन इन नवनको, मर्दनही गुण जान ॥१३॥

ऊख, तिल, शूद्र, सुवर्ण, स्त्री, पृथ्वी चन्दन दही और पान, ये वस्तुएँ जितनी ही मर्दन की जाती है, उतनी ही गुणदायक होती हैं ॥१३॥

दरिद्रता धीरतया विराजते ।
कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते ॥
कन्दनता चोष्णतया विराजते ।
कुरूपता शीलतया विराजते ॥१४॥

दोहा—दारिद सोहत धीरते, कुपट सुभगता पाय ।
लहि कुअन्न उष्णत्व को, शील कुरूप सुहाय ॥१४॥

धैर्य से दरिद्रता की, सफाई से खराब वस्त्र की, गर्मी से कदन्न की, और शील से कुरूपता भी सुन्दर लगती है ।१४॥

इति चाणक्ये नवमोऽध्यायः ॥९॥

—:o:—

# अथ वृद्ध चाणक्यस्योत्तरार्द्धम् ।

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः ।
विद्यारत्नेन हीनो यः स हीनः सर्ववस्तुषु ॥१॥

दोहा—हीन नहीं धन हीन है, धन थिर नाहिं प्रवीन ।
हीन न और बखानिये, विद्याहीन सुदीन ॥१॥

धनहीन मनुष्य हीन नहीं कहा जा सकता वहा वास्तव में धनी है । किन्तु जो मनुष्य विद्यारूपी रत्न से हीन है, वह सभी वस्तुओं से हीन है ॥१॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
शास्त्रपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत् ॥२॥

दोहा—दृष्टिशोधि पग धरिय मग, पीजिय जल पटशोधि ।
शास्त्रशोधि बोलिय वचन, करिय काज मन शोधि ॥२॥

आँख से अच्छी तरह देख-भाल कर पैर धरे, कपड़े से छान कर जल पिये, शास्त्रसम्मत बात कहे और मन को हमेशा पवित्र रखे ॥२॥

सुखार्थी चेत्त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत्त्यजेत्सुखम् ।
सुखार्थिनः कुतो विद्या सुखं विद्यार्थिनः कुतः ॥३॥

दोहा—सुख चाहै विद्या तजै, सुख तजि विद्या चाह ।
अर्थिहिं को विद्या कहा, विद्यार्थिहिं सुख काह ॥३॥

जो मनुष्य विषय सुख चाहता हो, वह विद्या के पास न जाय । जो विद्या का इच्छुक हो, वह विषय सुख छोड़े । सुखार्थी को विद्या और विद्यार्थी को सुख कहाँ मिल सकता है ॥३॥

कवयः किं न पश्यन्ति किं न कुर्वन्ति योषितः ।
मद्यपाः किं न जल्पन्ति किं न खादन्ति वायसाः ॥४॥

दोहा—काह न जाने सुकवि जन, करै काह नहिं नारि ।
मद्यप काह न बकि सकै, काग खाहिं केहि वारि ॥४॥

कवि क्या वस्तु नहीं देख पाते ? स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं ? शराबी क्या नहीं बक जाते ? और कौवे क्या नहीं खा जाते ॥४॥

रंकं करोति राजानं राजानं रंकमेव च ।
धनिनं निर्धनं चैव निधनं धनिनं विधिः ॥५॥

छं०--धनवै अति रंकन भूमिपती अरु भूमिपतीनहुँ रंक अति ।
धनिकै धनहीन फिरै करती अधनीन धनी विधिकेरि गती ।।
विधाता कङ्गाल को राजा, राजा को कङ्गाल, धनी को निर्धन और निर्धन को धनी बनाता ही रहता है ।।५।।

लुब्धानां याचकः शत्रुर्मूर्खाणां बोधको रिपुः ।
जारस्त्रीणां पतिः शत्रुश्चौराणां चन्द्रमा रिपुः।।६।।

दोहा--याचक रिपु लोभीन के, मूढ़नि जो शिषदान ।
जार तियन निज पति कह्यो, चोरन शशि रिपु जान ।।६।।
लोभी का शत्रु है याचक, मूर्ख का शत्रु है उपदेश देने वाला, कुलटा स्त्री का शत्रु है उसका पति और चोरों का शत्रु चन्द्रमा है ।।६।।

येषां न विद्या न तपो न दानं
न चापि शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।७।।

दोहा--धर्मशील गुण नाहिं जेहिं, नहिं विद्या तप दान ।
मनुज रूप भुवि भार ते, विचरत मृग कर जान ।।७।।
जिस मनुष्य में न विद्या है, न तप है, न शील है और न गुण है ऐसे मनुष्य पृथ्वी के बोझ रूप होकर मनुष्य रूप में पशु सदृश जीवन-यापन करते हैं ।।७।।

अन्तः सारविहीनानामुपदेशो न जायते ।
मलयाचलसंसर्गान्न वेणुश्चन्दनायते ।।८।।

सोरठा—शून्य हृदय उपदेश, नाहिं लगै कैसो करिय।
बसै मलय गिरि देश, तऊ बांस में बास नहिं ॥८॥

जिनकी अन्तरात्मा में कुछ तत्व नहीं होता ऐसे मनुष्यों को किसी का उपदेश कुछ भी असर नहीं करता। मलयाचल के संसर्ग से और वृक्ष चन्दन हो जाते हैं, पर बाँस चन्दन नहीं होता ॥८॥

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥९॥

दोहा—स्वाभाविक नहिं बुद्धि जेहि, ताहि शास्त्र करु काह।
जो नर नयनविहीन हैं, दर्पण से करु काह ॥९॥

जिसके पास स्वयं बुद्धि नहीं है, उसे क्या शास्त्र सिखा देगा। जिसकी दोनों आँखें फूट गई हों, क्या उसे शीशा दिखा देगा? ॥९॥

दुर्जनं सज्जनं कर्तुमुपायो न हि भूतले।
अपानं शतधा धौतं न श्रेष्ठमिन्द्रियं भवेत् ॥१०॥

दोहा—दुर्जन को सज्जन करन, भूतल नहीं उपाय।
हो अपान इन्द्रिय न शुचि, सौ सौं धोयी जाय ॥१०॥

इस पृथ्वीतल में दुर्जन को सज्जन बनाने का कोई यत्न है ही नहीं। अपान प्रदेश को चाहे सैकड़ों बार क्यों न धोया जाय फिर भी वह श्रेष्ठ इन्द्रिय नहीं हो सकता ॥१०॥

आप्तद्वेषाद्भवेन्मृत्युः परद्वेषाद्धनक्षयः।
राजद्वेषाद्भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः ॥११॥

दोहा—सन्त विरोध से मृत्यु, धन क्षय करि पर द्वेष।
राजद्वेष से नसत है, कुल क्षय कर द्विज द्वेष ॥११॥

बड़े बूढ़ों से द्वेष करने पर मृत्यु होती है। शत्रु से द्वेष करने पर धन का नाश होता है। राजा से द्वेष करने पर सर्वनाश हो जाता है और ब्राह्मण से द्वेष करने पर कुल का ही क्षय हो जाता है ॥११॥

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं
द्रुमालयं पक्वफलाम्बुसेवनम्।
तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥१२॥

छन्द—गज बाघ सेवित वृक्ष घन बन माहि बरु रहिबो करै।
अरु पत्र फल जल सेवनो तृण सेज बरु लहिबो करै॥
शतछिद्र बल्कल वस्त्र करिबहु चाल यह गहिबो करै।
निज बन्धु महँ धनहीनह्वै नहिं जीवनो चहिबो करै।

बाघ और बड़े-बड़े हाथियों के झुण्ड जिस वन में रहते हों उसमें रहना पड़े, निवास करके पके फल तथा जल पर जीवन-यापन करना पड़ जाय, घास फूस पर सोना पड़े और सकड़ों जगह फटे वल्कल वस्त्र पहनना पड़े तो अच्छा पर अपनी बिरादरी में दरिद्र होकर जीवन बिताना अच्छा नहीं है ॥१२॥

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या
वेदाः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मात् मूलं यत्नतो रक्षणीयम्।
छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥१३॥

छन्द—विप्र वृक्ष हैं मूल सन्ध्या वेद शाखा जानिये ।
धर्म कर्म है पत्र दोऊ मूल को नहिं नाशिये ॥
जो नष्ट मूल ह्वै जाय तो कुल शाख पात न फूटिये ।
यही नीति सुनीति है की मूल रक्षा कीजिये ॥१३॥

ब्राह्मण वृक्ष के समान है, उसकी जड़ है संध्या, वेद है शाखा और कर्म पत्ते हैं। इसलिए मूल ( सन्ध्या ) की यत्न पूर्वक रक्षा करो । क्योंकि जब जड़ ही कट जायगी तो न शाखा रहेगी और न पत्र ही रहेगा ॥१३॥

**माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः ।**
**बान्धवा विष्णु भक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥१४॥**

दोहा—लक्ष्मी देवी मातु हैं, पिता विष्णु सर्वेश ।
कृष्णभक्त बन्धू सभी, तीन भुवन निज देश ॥१४॥

भक्त मनुष्यकी माता हैं लक्ष्मीजी, विष्णु भगवान् पिता हैं, विष्णुके भक्त भाई बन्धु हैं और तीनों भुवन उसका देश है ॥१४॥

**एकवृक्षे समारूढा नानावर्णा विहंगमाः ।**
**प्रभाते दिक्षु दशसु का तत्र परिवेदना ? ॥१५॥**

दोहा—बहु विधि पक्षी एक तरु, जो बैठें निशि आय ।
भोर दशो दिशि उड़ि चलें, कह कोही पछिताय ॥१५॥

विविध वर्ण ( रंग ) के पक्षी एक ही वृक्ष पर रात भर बसेरा करते हैं और सवेरे दशों दिशाओं में उड़ जाते हैं । यही दशा मनुष्यों की भी है, फिर इसके लिये सन्ताप करने की क्या जरूरत ? ॥१५॥

**बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।**

वने हस्ती मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ॥१६॥

दोहा—बुद्धि जासु है सो बली, निबुद्धिहिं बल नाहिं ।
अति बल हाथिहिं स्यार लघु, चतुर हतेसि मन माहिं ॥१६।

जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल है, जिसके बुद्धि ही नहीं उसके बल कहाँ से होगा। एक जंगल में एक बुद्धिमान् खरगोश ने एक मतवाले हाथी को मार डाला था ॥१६॥

का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते ।
नो चेदर्भकजीवनाय जननीस्तन्यं कथं निःसरेत ॥
इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलम् ।
त्वत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालो मया नीयते ॥१७॥

छन्द—है नाम हरिको पालक मन जीवन शंका क्यों करनी ।
नहिं तो बालकजीवन को थन से पय निसरत क्यों जननी॥
यही जानकर बार है यदुपति लक्ष्मीपति तेरे ।
चरण कमल के सेवन से दिन बीते जायँ सदा मेरे ।१७॥

यदि भगवान् विश्वंभर कहलाते हैं तो हमें अपने जीवन सम्बन्धी झंझटों (अन्न-वस्त्र आदि) की क्या चिन्ता ? यदि वे विश्वम्भर न होते तो जन्म के पहले ही बच्चे को पीने के लिए माता के स्तन में दूध कैसे उतर आता। बार-बार इसी बात को सोचकर हे यदुपते ! हे लक्ष्मीपते ! मैं केवल आप के चरण-कमलों की सेवा करके अपना समय बिताता हूँ ॥१७॥

गीर्वाणवाणीषु विशिष्टबुद्धि—
स्तथापि भाषान्तरलोलुपोऽहम् ।

यथा सुधायाममरेषु सत्यां
स्वर्गाङ्गनानामधरासवे रुचिः ॥१८॥

सो०—देववानि बस बुद्धि, तऊ और भाषा चहौं।
यदपि सुधा सुर देश, चहैं अवस सुर अधर रस ॥१८॥

यद्यपि मैं देववाणी में विशेष योग्यता रखता हूँ, फिर भी भाषान्तर का लोभ है ही। जैसे स्वर्ग में अमृत जैसी उत्तम वस्तु विद्यमान है फिर भी देवताओं को देवांगनाओं के अधरामृत पान करने की रुचि रहती ही है ॥१८॥

अन्नाद्दशगुणं पिष्टं पिष्टाद्दशगुणं पयः।
पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसाद्दशगुणं घृतम् ॥१९॥

दोहा—चूर्ण दश गुणो अन्न ते, ता दश गुण पय जान।
पय से अठगुण मांस ते, तेहि दशगुण घृत मान ॥१९॥

खड़े अन्न की अपेक्षा दसगुना बल रहता है पिसान में। पिसान से दसगुना बल रहता है दूध में। दूध से अठगुना बल रहता है मांस में और मांस से भी दसगुना बल है घी में ॥१९॥

शाकेन रोगा वर्द्धन्ते पयसो वर्द्धते तनुः।
घृतेन वर्द्धते वीर्यं मांसान्मासं प्रवर्द्धते ॥२०॥

दोहा—रोग बढ़त है शाकते, पय से बढ़त शरीर।
घृत खाये बीरज बढ़े, मांस मांस गम्भीर ॥२०॥

शाक से रोग, दूध से शरीर, घी से वीर्य और मांस से मांस की वृद्धि होती है ॥२०॥

इति चाणक्ये दशमोऽध्यायः ॥१०॥

# अथ एकादशोऽध्यायः ॥११॥

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता ।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः सहजा गुणः ॥१॥

दोहा—दानशक्ति प्रिय बोलिबो, धीरज उचित विचार ।
ये गुण सीखे ना मिलैं, स्वाभाविक हैं चार ॥१॥

दानशक्ति, मीठी बात करना, धैर्य धारण करना, समय पर उचित अनुचित का निर्णय करना, ये चार गुण स्वाभाविक सिद्ध हैं। सीखने से नहीं आते ॥१॥

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रयेत् ।
स्वयमेव लयं याति यथा राज्यमधर्मतः ॥२॥

दोहा—वर्ग आपनो छोड़ि के, गहे वर्ग जो आन ।
सो आपुइ नशि जात है, राज अधर्म समान ॥२॥

जो मनुष्य अपना वर्ग छोड़कर पराये वर्ग में जाकर मिल जाता है तो वह अपने आप नष्ट हो जाता है। जैसे अधर्म से राजा लोग चौपट हो जाते हैं ॥२॥

हस्ती स्थूलतनुः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रांकुशः।
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः ॥
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रन्नगाः ।
तेजो यस्य विराजते स बलवान्स्थूलेषु कः प्रत्ययः।३।

सवैया—भारि करी रह अंकुश के वश का वह अंकुश भारी करीसों ।
त्यों तम पुंजहिं नाशत दीपसो दीपकहू अँधियार सरीसों ॥

वज्र के मारे गिरे गिरिहूँ कहूँ होय भला वह वज्र गिरीसों ।
तेज है जासु सोई बलवान कहा बिसवास शरीर बड़ोसों ॥३॥

हाथी मोटा-ताजा होता है, किन्तु अंकुश के वश में रहता है तो क्या अंकुश हाथी के बराबर है ? दीपक के जल जानेपर अन्धकार दूरहो जाता है तो क्या अन्धकार के बराबर दीपक है ? इन्द्र के वज्रप्रहार से पहाड़ गिर जाते हैं तो क्या वज्र उन पर्वतों के बराबर है ? इसका मतलब यह निकला कि जिसमें तेज है, वही बलवान् है यों मोटा-ताजा होने से कुछ नहीं होता ॥३॥

**कलौ दश सहस्राणि हरिस्त्यजति मेदिनीम् ।**
**तदर्द्धं जाह्नवीतोयं तदर्द्धं ग्रामदेवताः ॥४॥**

दोहा—दस हजार बीते बरस, कलि में तजि हरि देहि ।
तासु अर्द्ध सुर नदी जल, ग्रामदेव अधि तेहि ॥४॥

कलि के दस हजार वर्ष बीतने पर विष्णु भगवान् पृथ्वी छोड़ देते हैं । पाँच हजार वर्ष बाद गंगा का जल पृथ्वी को छोड़ देता है और उसके आधे यानी ढाई हजार वर्ष में ग्राम-देवता ग्राम छोड़कर चलते हैं ॥४॥

**गृहासक्तस्य नो विद्या न दया मांस भोजिनः ।**
**द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रैणस्य न पवित्रता ॥५॥**

दोहा—विद्या गृह आसक्त को, दया मांस जे खाहिं ।
लोभहिं होत न सत्यता, जारहिं शुचिता नाहिं ॥५॥

गृहस्थी के जंजाल में फँसे व्यक्ति को विद्या नहीं आती, मांसभोजी के हृदय में दया नहीं आती, लोभी के पास सचाई नहीं आती और कामी पुरुष के पास पवित्रता नहीं आती ॥५॥

न दुर्जनःसाधुदशामुपैति बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः।
आमूलसिक्तःपयसाघृतेन ननिम्बवृक्षोमधुरत्वमेति।६।

दोहा—साधु दशा को नहिं गहै, दुर्जन बहु सिखलाय।
दूध घीव से सींचिये, नाम न तदपि मिठाय॥६॥

दुर्जन व्यक्ति को चाहे कितना भी उपदेश क्यों न दिया जाय वह अच्छी दशा को नहीं पहुँच सकता। नीम के वृक्ष को चाहे जड़ से लेकर सिर तक घी और दूध से ही क्यों न सींचा जाय फिर भी उसमें मीठापन नहीं आ सकता॥६॥

अन्तर्गतमलो दुष्टः तीर्थस्नानशतैरपि।
न शुद्धयति तथा भाण्डं सुरदा दाहितं च यत्॥७॥

दोहा—मन मलीन खल तीर्थ ये, यदि सौ बार नहांहि।
होयँ शुद्ध नहिं जिमि सुरा, बासन दीनेहु दाहिं॥७॥

जिसके हृदय में पाप घर कर चुका है, वह सैकड़ों बार तीर्थ-स्नान करके भी शुद्ध नहीं हो सकता। जैसे कि मदिरा का पात्र अग्नि में झुलसने पर भी पवित्र नहीं होता॥७॥

न वेत्ति यो यस्य गुण प्रकर्षं
स तं सदा निन्दन्ति नाऽत्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भलब्धां
मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाम्॥८॥

स्वा० छं०—जो न जानु उत्तमत्व जाहिके गुण गान की।
निन्दतो सो ताहि तो अचर्ज कौन खान की॥
ज्यों किराति हाथि माथ मोतियाँ विहाय कै।
घूँघची पहीनतीं विभूषणैं बनाय कै॥८॥

जो जिसके गुणों को नहीं जानता, वह उसकी निन्दा करता रहता है तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। देखो न, जंगल की रहनेवाली भिलनी हाथी के मस्तक की मुक्ता को छोड़कर घुँघची ही पहनती है ॥८॥

ये तु संवत्सरं पूर्णं नित्यं मौनेन भुंजते ।
युगकोटि सहस्रन्तु स्वर्गलोके महीयते ॥९॥

दोहा—जो पूरे इक बरस भर, मौन धरे नित खात ।
युग कोटिन के सहस तक, स्वर्ग माँहिं पूजे जात ॥९॥

जो लोग केवल एक वर्ष तक, मौन रहकर भोजन करते हैं वे दश हजार वर्ष तक स्वर्गवासियों से सम्मानित होकर स्वर्ग में निवास करते हैं ॥९॥

कामं क्रोधं तथा लोभं स्वादुशृंगारकौतुम् ।
अतिनिद्राऽतिसेवा च विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत् ॥१०॥

सोरठा—काम क्रोध अरु स्वाद, लोभ शृङ्गारहिं कौतुकहिं ।
अति सेवन निद्राहि, विद्यार्थी आठौ तजे ॥१०॥

काम, क्रोध, लोभ, स्वाद, शृङ्गार, खेल-तमाशे, अधिक नींद और किसी की अधिक सेवा, विद्यार्थी इन आठ कामों को त्याग दे। क्योंकि ये आठ विद्याध्ययन में बाधक हैं ॥१०॥

अकृष्टफलमूलानि वनवासरतः सदा ।
कुरुतेऽहरहः श्राद्धमृषिर्विप्रः स उच्यते ॥११॥

दोहा—बिनु जोते महि मूल फल, खाय रहे बन माहिं ।
श्राद्ध करै जो प्रति दिवस, कहिय विप्र ऋषि ताहि ॥११॥

जो ब्राह्मण बिना जोते फल पर जीवन बिताता, हमेशः बन में रहना पसन्द करता और प्रति दिन श्राद्ध करता है, उस विप्र को ऋषि कहना चाहिए ॥११॥

एकाहारेण सन्तुष्टः षट्कर्मनिरतः सदा ।
ऋतुकालेऽभिगामी च स विप्रो द्विज उच्यते ॥१२॥

सोरठा—एकै बार अहार, तुष्ट सदा षटकर्मरत ।
ऋतु में प्रिया विहार, करै बनै सो द्विज कहै ॥१२॥

जो ब्राह्मण केवल एक बार के भोजन से सन्तुष्ट रहता और यज्ञ, अध्ययन दानादि षट्कर्मों में सदा लीन रहता और केवल ऋतु-काल में स्त्रीगमन करता है, उसे द्विज कहना चाहिए ॥१२॥

लौकिके कर्मणि रतः पशूनां परिपालकः ।
वाणिज्यकृषिकर्ता यः स विप्रो वैश्य उच्यते ॥१३॥

सोरठा—निरत लोक के कर्म, पशु पालै बानिज करै ।
खेती में मन कर्म, करैं विप्र सो वैश्य है ॥१३॥

जो ब्राह्मण सांसारिक धन्धों में लगा रहता है पशु पालन करता, वाणिज्य व्यवसाय करता या खेती ही करता है वह विप्र वैश्य कहलाता है ॥१३॥

लाक्षादितैलनीलानां कौसुम्भमधुसर्पिषाम् ।
विक्रेता मद्यमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥१४॥

सोरठा—लाख आदि मदमांसु, घीव कुसुम अरु नील मधु ।
तेल बेचियत तासु, शूद्र, जानिये विप्र यदि ॥१४॥

जो लाख, तेल, नील कुसुम, शहद, घी, मदिरा और मांस बेचता है, उस ब्राह्मण को शूद्र-ब्राह्मण कहते हैं ॥१४॥

परकार्यविहन्ता च दाम्भिकः स्वार्थसाधकः।
छली द्वेषी मृदुक्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते ॥१५॥

सोरठा—दंभी स्वारथ सूर, पर कारज घालै छली।
द्वेषी कोमल क्रूर, विप्र बिलार कहाव ॥१५॥

जो औरों का काम बिगाड़ता, पाखण्डपरायण रहता, अपना मतलब साधने में तत्पर रहता, छल, आदि कर्म करता ऊपर से मीठा, किन्तु हृदय से क्रूर रहता ऐसे ब्राह्मण को मार्जार विप्र कहते हैं ॥१५॥

वापीकूपतडागानामारामसुरवेश्मनाम्।
उच्छेदने निराशंकः विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥१६॥

सोरठा—कूप बावली बाग, औ तडाग सुरमन्दिरहिं।
नाशै जो भय त्यागि, म्लेच्छ विप्र कहाव सो ॥१६॥

जो बावली, कुआँ, तालाब, बगीचा और देवमन्दिरों के नष्ट करने में नहीं हिचकता, ऐसे ब्राह्मण को ब्राह्मण न कहकर म्लेच्छ कहा जाता है ॥१६॥

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं परदाराभिमर्षणम्।
निर्वाहः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥१७॥

सोरठा—परनारी रत जोय, जो गुरु सुर धन को हरै।
द्विज चाण्डाल सो होय, सबमें करु निर्वाह जो ॥१७॥

जो देवद्रव्य और गुरुद्रव्य अपहरण करता, परायी स्त्री के साथ दुराचार करता और लोगों की वृत्ति पर ही जो अपना निर्वाह करता है, ऐसे ब्राह्मण को चाण्डाल कहा जाता है ॥१७॥

देयं भोज्यधनं सुकृतिभिर्नो संचयस्तस्य वै
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता ।
अस्माकं मधुदानभोगरहितं नष्टं चिरात्सञ्चितं
निर्वाणादिति नष्टपादयुगलं घर्षन्त्यहो मक्षिकाः ।१८

सवैया—मतिमानको चाहिये वे धन भोज्य सुसंचहिं नाहिं दियोईकरैं
ते वलि विक्रम कर्णहु कीरति, आजुलों लोग कहोई करैं ॥
चिरसंचि मधु हम लोगन को बिनु भोग दिये नसिबोई करैं ।
यह जानि गये मधुनास दोऊ मधुमखियाँ पाँव घिसोई करैं ।

आत्म—कल्याण की भावनावालों को चाहिये कि अपनी साधारण आवश्यकता से अधिक बचा हुआ अन्न वस्त्र या धन दान कर दिया करें, जोड़ें नहीं। दान ही की बदौलत कर्ण वलि और महाराज विक्रमादित्य की कीर्ति आज भी विद्यमान है। मधुमक्खियों को देखिये वे यही सोचती हुई अपने पैर रगड़ती हैं कि "हाय! मैंने दान और भोग से रहित मधु को बहुत दिनों में इकट्ठा किया और वह क्षण में दूसरा ले गया"॥१८॥

इति चाणक्ये एकदशोऽध्यायः ॥११॥

—:॥:—

# अथ द्वादशोऽध्यायः ।

सानन्दं सदनं सुतास्तु सुधियः कान्ता प्रियालापिनी
इच्छापूर्तिधनं स्वयोषितिरतिः स्वाज्ञापराः सेवकाः

आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्ठान्नपानं गृहे
साधोः सङ्गमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः।१।

स० सानन्दमंदिर पंडित पुत्र सुबोल रहै तिरिया पुनि प्राणपियारी।
इच्छित सम्पति और स्वतीय रति रहै सेवक भौंह निहारी ॥
आतिथ औ शिवपूजन रोज रहे घर संच सुअन्न औ वारी।
साधुन संग उपासात है नित धन्य अहै गृह आश्रम धारी ॥१॥

आनन्द से रहने लायक घर हो, पुत्र बुद्धिमान् हो, स्त्री मधुरभाषिणी हो, मानमाना धन हो, अपनी स्त्री पर प्रेम हो, सेवक आज्ञाकारी हो, घर आये हुए अतिथियों का सत्कार हो, प्रति दिन शिवजी का पूजन होता रहे और सज्जनों का साथ हो तो फिर वह गृहस्थाश्रम धन्य है ॥१॥

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्चे-
च्छ्रद्धेण या स्वल्पमुपैति दानम्।
अनन्तपारं समुपैति दानम्।
यद्दीयते तन्न लभेद् द्विजेभ्यः ॥२॥

दोहा–दिया दयायुत साधुसो, आरत विप्रहिं जौन।
थोड़ी मिलै अनन्त ह्वै, द्विज से मिलै न तौन ॥२॥

जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक और दयाभाव से दीन-दुखियों तथा ब्राह्मणों को थोड़ा भी दान दे देता है तो वह उसे अनन्तगुणा होकर उन दीन ब्राह्मणों से नहीं बल्कि ईश्वर के दरबार से मिलता है ॥२॥

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीतिःसाधुजने स्मयः खलजने विद्वज्जने चार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता इत्थं
ये पुरुषा कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥३॥

कविता—दक्षता स्वजनबीच दया परजन बीच शठता सदा ही रहे बीच दुरजन के। प्रीति साधुजन में खलन माहिं अभिमान सरल स्वभाव रहे बीच पण्डितन के। शत्रुन में शूरता सयानन में क्षमा पूर धुरताई राखे फेरि बीच नारिजन के। ऐसे सब कला में कुशल रहैं जेते लोग लोक थिति रहि रहे बीच तिनहिन के ॥३॥

जो मनुष्य अपने परिवार में उदारता, दुर्जनों के साथ शठता, सज्जनों से प्रेम, दुष्टों में अभिमान, विद्वानों में कोमलता, शत्रुओं में वीरता, गुरुजनों में क्षमा और स्त्रियों में धूर्तता का व्यवहार करते हैं। ऐसे ही कलाकुशल मनुष्य संसार में आनंद के साथ रह सकते हैं ॥३॥

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ
नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ ॥
अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुङ्गं शिरो ।
रे रे जम्बुक मुञ्चमुञ्च सहसा नीचं सुनिन्द्यं वपुः ।४।

छ०—यह पाणि दान विहीन कान पुराण वेद सुने नहीं ।
अरु आँखि साधुन दर्शहीन न पाँव तीरथ में कहीं ॥

अन्याय वित्त भरो सुपेट उठ्यो शिरो अभिमानहीं।
वपु नीच निंदित छोड़ु छोड़ अरे सियार सो वेगहीं ॥ १ ॥

जिसके दोनों हाथ दान विहीन हैं, दोनों कान विद्याश्रवण से परांगमुख हैं, नेत्र सज्जनों का दर्शन नहीं करते और पैर तिर्थों का पर्यटन नहीं करते। जो अन्याय से अर्जित धन से पेट पालते हैं और गर्व से सिर ऊँचा करके चलते हैं, ऐसे मनुष्यों का रूप धारण किये हुए ऐ सियार! तू झटपट अपने इस नीच और निन्दनीय शरीर को छोड़ दे ॥ ४ ॥

**येषां श्रीमद्यशोदा सुतपदकमले नास्ति भक्तिर्नराणां**
**येषामाभीरकन्याप्रियगुणकथने नानुरक्ता रसज्ञा।**
**येषां श्रीकृष्णलीलाललितरसकथा सादरौनैव कर्णौ**
**धिक्तांधिक्तांधिगेतां कथयतिसततंकीर्तनस्थोमृदङ्गः**

छं०-जो नर यसुमतिसुत चरणन में भक्ति हृदय से कीन नहीं।
जो राधाप्रिय कृष्ण चन्द्र के गुण जिह्वा नाहिं कहीं ॥
जिनके दोउ कानन माहिं कथारस कृष्ण को पीय नहीं।
कीर्तन माहिं मृदंग इन्हें धिक् २ए हि भ, ति कहेहि कहीं ।५।

कीर्तन के समय बजता हुआ मृदंग कहता है कि जिन मनुष्यों को श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरण कमलों में भक्ति नहीं है श्रीराधारानी के प्रिय गुणों के कहने में जिसकी रसना अनुरक्त नहीं और श्रीकृष्ण भगवान् की लीलाओं को सुनने के लिए जिसके कान उत्सुक नहीं हैं। ऐसे लोगों को धिक्कार है, धिक्कार है ॥ ५ ॥

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ।
वर्षा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम् ।
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः

छं०—पात न होय करीरन में यदि दोष बसन्तहि कौन तहाँ है ।
त्यों जब देखि सकै न उलूक दिये तहँ सूरज दोष कहाँ है ।
चातक आनन बूँदपरै नहिं मेघन दूषण कौन यहाँ है ।।
जो कछु पूरब माथ लिखा विधि मेटनको समरत्थ कहाँ है ।।

यदि करीर के पेड़ में पत्ते नहीं लगते तो बसन्त ऋतु का क्या दोष ? उल्लू दिन को नहीं देखता तो इसमें सूर्य का क्या दोष ? बरसात की बूँदें चातक के मुख में नहीं गिरतीं तो इसमें मेघ का क्या दोष ? विधाता ने पहले ही ललाट में जो लिख दिया है, उसे कौन मिटा सकता है ।। ६ ।।

सत्सङ्गाद् भवति हि साधुता खलानाम् ।
साधूनां न हि खलसंगतेः खलत्वम् ।।
आमोदं कुसुमभवं मृदेव धत्ते
मृद्गन्धं नहि कुसुमानि धारयन्ति ।।७।।

व० ति०—सत्संगसों खलन साधु स्वभाव सेव ।
साधू न दुष्टपन संग परेहु लेव ।।

माटिहि बास कछु फूलन धार पावै ।
माटी सुवास कहुँ फूल नहिं बसावै ।। ७ ।।

सत्संग से दुष्ट सज्जन हो जाते हैं । पर सज्जन उनके संग से दुष्ट नहीं होते । जैसे फूल की सुगंधि को मिट्टी अपनाती है, पर फूल मिट्टी की सुगन्धि को नहीं अपनाते ।। ७ ।।

**साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थीभूता हि साधवः ।**
**कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ।।८।।**

दोहा—साधू दर्शन पुण्य है, साधु तीर्थ के रूप ।
काल पाय तीरथ फलै, तुरतहिं साधु अनूप ।। ८ ।।

सज्जनों का दर्शन बड़ा पुनीत होता है । क्योंकि साधुजन तीर्थ के समान रहते हैं । बल्कि तीर्थ तो कुछ समय बाद फल देते हैं पर सज्जनों का संत्सग तत्काल फलदायक है ।। ८ ।।

**विप्राऽस्मिन्नगरे महान् कथय कस्तालद्रुमाणां गणः**
**को दाता रजको ददाति वसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि ।**
**को दक्षः परवित्तदारहरणे सर्वोऽपि दक्षो जनः**
**कस्माज्जीवसि हे सखे विष कृमि न्यायेन जीवाम्यहम् ।**

कवित्त—कहौ या नगर में महान् है कौन ? विप्र ! तारन के वृक्षन के कतार के कतार हैं । दाता कहो कौन है ? रजक देत साँझ आनि धोयँ शुभ वस्त्र को जो देत सकार है । दक्ष कहौ कौन है ? प्रत्यक्ष सबही हैं दक्ष हरने को कुशल परायो धनदार हैं

हैं ? कैसे तुम जीवत कहो मोसों मीत ! विष कृमिन्याय कर लीज निरधार है ॥ ९ ॥

कोई पथिक किसी नगर में जाकर किसी सज्जन से पूछता है हे भाई ! नगर में कौन बड़ा है ? उसने उत्तर दिया—बड़े तो ताड़ के पेड़ हैं। ( प्रश्न ) दाता कौन है ? (उत्तर) धोबी, जो सवेरे कपड़े ले जाता और शाम को वापस दे जाता है। ( प्रश्न ) यहाँ चतुर कौन है ? (उत्तर) पराई दौलत ऐंठने में यहाँ सभी चतुर हैं। (प्रश्न) तो फिर हे सखे ! तुम यहाँ जीते कैसे हो ? ( उत्तर ) उसी तरह जीता हूँ जैसे कि विष का कीड़ा विष में रहता हुआ भी जिन्दा रहता है ॥ ९ ॥

न विप्रपादोदकपंकजानि
न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि ।
स्वाहास्वधाकारविवर्जितानि
श्मशानतुल्यानिगृहाणि तानि ॥१०॥

दोहा—विप्रचरण के उदक से, होत जहाँ नहिं कीच ।
वेद ध्वनि स्वाहा नहीं, वे गृह मर्घट नीच ॥

जिस घर में ब्राह्मणों के पैर धुलने से कीचड़ नहीं होता, जिसके यहाँ वेद और शास्त्रों की ध्वनि का गर्जन नहीं और जिस घर में स्वाहा स्वधा का कभी उच्चारण नहीं होता, ऐसे घरों को श्मशान के तुल्य समझना चाहिए ॥ १० ॥

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा
शांतिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ॥११॥

सोरठा—सत्य मातु पितु ज्ञान, सखा दया भ्राता धरम।
तिया शांति सुत जान, छमा यही षट् बन्धु मम ॥११॥

कोई ज्ञानी किसी के प्रश्न का उत्तर देता हुआ कहता है कि सत्य मेरी माता है, ज्ञान पिता है धर्म भाई है, दया मित्र है, शांति स्त्री है और क्षमा पुत्र है, ये ही मेरे छः बान्धव हैं ॥११॥

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥१२॥

सोरठा—है अनित्य यह देह, विभव सदा नाहिं थिर है।
निकट मृत्यु नित हेय, चहिए कीन संग्रह धरम ॥१२॥

शरीर क्षणभंगुर है, धन भी सदा रहनेवाला नहीं है, मृत्यु बिल्कुल समीप विद्यमान है। इसलिए धर्म का संग्रह करो।

निमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावो नवतृणोत्सवाः।
पत्युत्साहयुता भार्या अहं कृष्ण! रणोत्सवः ॥१३॥

दोहा—पति उत्सव युवतीन को, गौवन को नवघास।
नेवत द्विजन को हे हरि, मोहिं उत्सव रणवास ॥१३॥

ब्राह्मण का उत्सव है निमन्त्रण, गौओं का उत्सव है नई घास। स्त्री का उत्सव है पति का आगमन, किन्तु हे कृष्ण! मेरा उत्सव है युद्ध ॥१३॥

मातृवत्परदारेषु परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पंडितः ॥१४॥

दोहा—पर धन माटी के सरिस, परतिय माता भेष।
आपु सरीखे जगत सब, जो देखे सो देख ॥१४॥

जो मनुष्य परायी स्त्री को माता के समान समझता, पराया धन, मिट्टी के ढेले के समान और और अपने ही तरह सब प्राणियों के सुख-दुःख समझता है वही पण्डित है ॥१४॥

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता
मित्रेऽवंचकता गुरौ विनयता चित्तेऽतिगम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातृता
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति भो राघवः॥

कविता-धर्म माहिं रुचि मुख मीठी बानी दान वचन शक्ति मित्र संग नहिं ठगने वान है। वृद्धमाहिं नम्रता अरु मन में गम्भीरता शुद्ध है आचरण गुण विचार विमल हैं। शास्त्र का विशेष ज्ञान रूप भी सुहावन है शिवजी के भजन का सब काल ध्यान है। कहे पुष्पवन्त ज्ञानी राघव बीच मानों सब ओर इक ठौर कहिन को न मान है ॥१५॥

वशिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजी से कहते हैं—हे राघव! धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता, दान में उत्साह, मित्रों में निश्छल व्यवहार, गुरुजनों के समक्ष नम्रता, चित्त में गम्भीरता, आचार

में पवित्रता, शास्त्रों में विज्ञता, रूप में सुन्दरता और शिवजी में भक्ति, ये गुण केवल आप ही में हैं ॥१५॥

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः
सूर्यस्तीव्रकरः शशीक्षयकरः क्षारो हि वारां निधिः ।
कामो नष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौः
नैस्तांस्ते तुलयामि भो रघुपते कस्योपमादीयते।१६।

कवित्त—कल्पवृक्ष काठ अचल सुमेरु चिन्तामणिन भी जाति पत्थर की जानिये । सूरज में उष्णता अरु कलाहीन चन्द्रमा है सागरहू का जल खारो यह जानिये। कामदेव नष्टदेव अरु राजा बली दैत्यदेव कामधेनु गौ को भी पशु मानिये । उपमा श्रीराम की इन से कुछ तुलैना और कौन वस्तु जिसे उपमा बखानिये।१६।

कल्पवृक्ष काष्ठ है, सुमेरु अचल है, चिन्तामणि पत्थर है, सूर्य की किरणें तीखी हैं, चन्द्रमा घटता-बढ़ता है, समुद्र खारा है, कामदेव शरीर रहित है, बलि दैत्य है और कामधेनु पशु है । इसलिए इनके साथ तो मैं आपकी तुलना नहीं कर सकता । तब हे रघुपते ! किसके साथ आपकी उपमा दी जाय? ॥१६॥

विद्या मित्रं प्रवासे च भार्या मित्रं गृहेषु च ।
व्याधिस्तस्यौषधं मित्रं धर्मं मित्रं मृतस्य च ॥

दोहा—विद्या मित्र विदेश में, घरमें नारी मित्र ।
रोगिहिं औषधि मित्र है, मरे धर्म ही मित्र ॥१७॥

प्रवास में विद्या हित करती है, घर में स्त्री है, रोगग्रस्त

पुरुष का हित औषधि से होता है और धम मरे का उपकार करता है ॥१७॥

**विनयं राजपुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम् ।**
**अनृतं द्यूतकारेभ्यःस्त्रीभ्यः शिक्षेत् कैतवम् ॥१८॥**

दोहा—राजसुत से विनय अरु, बुध से सुन्दर बात ।
भूठ जुआरिन से कपट, स्त्री से सीखी जात ।।१८।।

मनुष्य को चाहिए कि विनय (तहजीब) राजकुमारों से, अच्छी-अच्छी बातें पण्डितों से, भुठाई जुआरियों से और छल-कपट स्त्रियों से सीखे ।। १८ ।।

**अनालोक्य व्ययं कर्ता अनाथः कलहप्रियः ।**
**आर्तः स्त्रीसर्वक्षेत्रेषु नरः शीघ्रं विनश्यति ॥१९॥**

दोहा—बिन विचार खर्चा करे, झगरे बिनहिं सहाय ।
आतुर सब तिय में रहै, सोई बेगि नसाय ।।१९।।

बिना समझे-बूझे खर्च करनेवाला अनाथ झगड़ालू, और सब तरह की स्त्रियों के लिए बेचैन रहनेवाला मनुष्य देखते-देखते चौपट हो जाता है ।।१९।।

**नाऽऽहारं चिन्तयेत्प्राज्ञो धर्ममेकं हि चिन्तयेत् ।**
**आहारो हि मनुष्याणां जन्मना सह जायते ॥२०॥**

दोहा—नहिं आहार चिन्तहिं सुमति, चिन्तहिं धर्महिं एक ।
होहिं साथ ही जनम के, नरहिं अहार अनेक ।।२०।।

विद्वान् को चाहिए कि वह भोजनकी चिन्ता न किया

करे। चिन्ता करे केवल धर्म की क्योंकि आहार तो मनुष्य के पैदा होने के साथ ही नियत हो जाया करता है ॥२०॥

**धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणे तथा ।**
**आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखीभवेत् ॥२१॥**

दोहा—लेन देन धन अन्न के, विद्या पढ़ने माहिं ।
भोजन सखा विवाह में, तजै लाज सुख ताहिं ॥२१॥

जो मनुष्य धन तथा धान्य के व्यवहार में, पढ़ने-लिखने में, भोजन में और लेन-देन में निर्लज्ज होता है, वही सुखी रहता है ॥२१॥

**जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ।**
**स हेतु सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥२२॥**

दोहा—एक एक जल बुन्द के, परत घटहु भरि जाय ।
सब विद्या धन धर्म को, कारण यही कहाय ॥२२॥

धीरे-धीरे एक-एक बूँद पानी से घड़ा भर जाता है। यही बात विद्या, धर्म और धन के लिए लागू होती है। तात्पर्य यह कि उपर्युक्त वस्तुओं के संग्रह में जल्दी न करे। करता चले धीरे-धीरे कभी पूरा हो ही जायगा ॥२२॥

**वयसः परिणामेऽपि यः खलः खल एव सः ।**
**सम्पक्वमपि माधुर्यं नापयातीन्द्रवारुणम् ॥२३॥**

दोहा—बीत गयेहू उमिर के, खल खलहीं रहि जाय ।
पकेहु मिठाई गुण कहूँ, नाहिं इनारू पाय ॥२३॥

अवस्था के ढल जाने पर भी जो खल है वह खल ही बना रहता है क्योंकि अच्छी तरह पका हुआ इन्द्रायन मीठापन को नहीं प्राप्त होता ।।२३।।

इति चाणक्ये द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

——

# अथ त्रयोदशोऽध्यायः

**मुहूर्त्तमपि जीवेच्च नरः शुक्लेन कर्मणा ।**
**न कल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधिना ।। १ ।।**

दोहा—वरु जीवै मुहूर्त भर, करिके शुचि सत्कर्म ।
नहिं भरि कल्पहु लोक दुहुँ, करत विरोध अधर्म ।।१।।

मनुष्य यदि उज्वल कर्म करके एक दिन भी जिन्दा रहे तो उसका जीवन सुफल है । इसके बदले इहलोक और परलोक इन दोनों के विरुद्ध कार्य करके कल्प भर जिवे तो वह जीना अच्छा नहीं है ।।१।।

**गते शोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत् ।**
**वर्तमानेन कालेन प्रवर्त्तन्ते विचक्षणः ।। २ ।।**

दोहा—गत वस्तुहिं सोचै नहीं, गुनै न होनी हार ।
कार्य करहिं परवीन जन, आय परे अनुसार ।।२।।

जो बात बीत गयी उसके लिए सोच न करो । और न

आगे होनेवाली के ही लिए चिन्ता करो। समझदार लोग सामने की बात को ही हल करने की चिन्ता करते हैं ॥२॥

**स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषाः पिता।**
**ज्ञातयः स्नान-पानाभ्यां वाक्यदानेन पंडिताः ॥३॥**

दोहा—देव सत्पुरुष औ पिता, करहिं सुभाव प्रसाद।
स्नानपान लहि बन्धु सब, पंडित पाय सुवाद ॥३॥

देवता, भलेमानुष और बाप ये तीन स्वभाव देखकर प्रसन्न होते हैं ... बन्धु वृन्द स्नान और पान से तथा वाक्य पालन से पण्डित लोग खुश होते हैं ॥३॥

**आयुः कर्म च वित्तञ्च विद्या निधनमेव च।**
**पञ्चैतानि च सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥४॥**

दोहा—आयुर्बल धन कर्म औ, विद्या मरण गनाय।
पाँचो रहते गर्भ में, जीवन के रचि जाय। ४॥

आयु, कर्म, सम्पत्ति, विद्या और मरण ये पाँच बातें तभी तय हो जाती हैं, जब कि मनुष्य गर्भ में ही रहता है ॥४॥

**अहो बत ! विचित्राणि चरितानि महात्मनाम्।**
**लक्ष्मी तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्ति च ॥५॥**

दोहा—अचरज चरित विचित्र अहि, बड़े जनन के आहिं।
जो तृण सम सम्पति मिले, तासु भार नै जाहिं ॥५॥

अहो ! महात्माओं के चरित्र भी विचित्र होते हैं। वैसे तो ये लक्ष्मी को तिनके की तरह समझते हैं। और जब वह आ ही जाती हैं तो इनके भार से दबकर नम्र हो जाते हैं ॥५॥

यस्य स्नेहो भयं तस्य स्नेहो दुःखस्य भाजनम् ।
स्नेहमूलानि दुःखानि तानि त्यक्त्वा वसेत्सुखम् ॥

दोहा—जाहि प्रीति भय ताहिको, प्रीति दुःख को पात्र ।
प्रीति मूल दुख त्यागि के, बसै तब सुख मात्र ॥६॥

जिसके हृदय में स्नेह (प्रीति) है, उसको भय है । जिसके पास स्नेह है, उसको दुःख है । जिसके हृदय में स्नेह है, उसी के पास तरह-तरह के दुःख रहते हैं, जो इसे त्याग देता है वह सुख से रहता।

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥ ७ ॥

दोहा—पहिलिहिं करत उपाय जो, परेहु तुरत जेहि सूझ ।
दुहुन बढ़त सुख मरत जो, होनी गुणत अबूझ ॥७॥

जो मनुष्य भविष्य में आनेवाली विपत्तिसे होशियार है और जिसकी बुद्धि समय पर काम कर जाती है ये दो मनुष्य आनन्द से आगे बढ़ते जाते हैं । इनके विपरीत जो भाग्य में लिखा होगा वह होगा, जो यह सोचकर बैठनेवाले हैं, उनका नाश निश्चित है ।

राज्ञधर्मणि[1] धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ॥ ८ ॥

दोहा—नृप धरमी धरमी प्रजा, पाप पाप मति जान ।
सममत सम भूपति तथा, परगट प्रजा पिछान ॥८॥

---

१. 'राज्ञि धर्मिणि' इत्यपि पाठः ।

राजा यदि धर्मात्मा होता है तो उसकी प्रजा भी धर्मात्मा होती है, राजा पापी होता है तो उसकी प्रजा भी पापी होती है। सम राजा होता है तो प्रजा भी सम ही होती है। कहने का भाव यह कि सब राजा का ही अनुसरण करते हैं। जैसा राजा होगा, उसकी प्रजा भी वैसी ही होगी ॥८॥

**जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम् ।**
**मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः ॥ ९ ॥**

दोहा--जीवन ही समुझैं मरेउ, मनुजहिं धर्म विहीन ।
नहिं संशय निरजीव सो, मरेउ धर्म जेहि कीन ॥९॥

धर्मविहीन मनुष्य को मैं जीते मुर्दे की तरह मानता हूँ। जो धर्मात्मा था, पर मर गया तो वह वास्तव में दीर्घजीवी था ॥९॥

**धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।**
**अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥१०॥**

दोहा--धर्म, अर्थ, अरु, मोक्ष, न एको है जासु ।
अजाकंठ कुचके सरिस, व्यर्थ जन्म ह तासु ॥१०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों में से एक पदार्थ भी जिसके पास नहीं है, तो बकरी के गले में लटकनेवाले स्तनों के समान उसका जन्म ही निरर्थक है ॥१०॥

**दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाः परयशोऽग्निना ।**
**अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते ॥११॥**

दोहा—और अगिन यश दुसह सो, जरि जरि दुर्जन नीच।
आप न तैसी करि सकैं, तब तिहिं निन्दहिं वीच ॥११॥

नीच प्रकृति के लोग औरों के यशरूपी अग्नि से जलते रहते हैं उस पद तक तो पहुँचने की सामार्थ्य उनमें रहती नहीं। इसलिए वे उसकी निन्दा करने लग जाते हैं ॥११॥

बन्धाय विषयासङ्गं मुक्त्यै निर्विषयं मनः।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥१२॥

दोहा—विषय सङ्ग परिबन्ध है, विषय हीन निर्वाह।
बंध मोक्ष इन दुहुन को, कारण मनै न आन ॥१२॥

विषयों में मन का, लगाना ही बन्धन है और विषयों से मन को हटाना ही मुक्ति है। भाव यह कि मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का हेतु है ॥१२॥

देहाभिमानगलिते ज्ञानेन परमात्मनः।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥१३॥

दोहा—ब्रह्मज्ञान सो देह को, विगत भये अभिमान।
जहाँ जहाँ मन जात है, तहाँ समाधिहिं जान ॥१३॥

परमात्मज्ञान से मनुष्य का जब देहाभिमान गल जाता है तो फिर जहाँ कहीं भी उसका मन जाता है तो उसके लिए सर्वत्र समाधि ही है ॥१३॥

ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम्।
दैवायत्तं यतः सर्वं तस्मात् संतोषमाश्रयेत ॥१४॥

दोहा—इच्छित सब सुख केहि मिलत, जब सब दैवाधीन
यहि ते संतोषहिं शरण, चहै चतुर कहँ कीन ॥१४॥

अपने मन के अनुसार सुख किसे मिलता है। क्योंकि संसार का सब काम दैव के अधीन है। इसलिये जितना सुख प्राप्त हो जाय, उतने में ही सन्तुष्ट रहो ॥१४॥

**यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम्।**
**तथा यच्च कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥१५॥**

दोहा—जैसे धेनु हजार में, वत्स जाय लखि मात।
तैसे ही किन्हें करम, करतहिं के ढिग जात ॥१५॥

जैसे हजारों गौओं में बछड़ा अपनी ही माँ के पास जाता है। उसी तरह प्रत्येक मनुष्य का कर्म ( भाग्य ) अपने स्वामी के ही पास जा पहुँचता है ॥१५॥

**अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सुखम्।**
**जनो दहति संसर्गाद्वनं संगविवर्जनात् ॥१६॥**

दोहा—अनथिर कारज ते न सुख, जन औ वन दुहुँ माहिं।
जन तेहि दाहै, सङ्ग ते, वन असंग ते दाहि ॥१६॥

जिसका कार्य अव्यवस्थित रहता है उसे न समाज में सुख है, न वन में। समाज में वह संसर्ग से दुःखी रहता है तो वन में संसर्ग त्याग से दुखी रहेगा ॥१६॥

**यत् खनित्वा खनित्रेण भूतले वारि विन्दति।**
**तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥१७॥**

दोहा—जिमि खोदत ही ते मिले, भूतल के मधि वारि ।
तैसेहि सेवा के किये, गुरु विद्या मिलि धारि ।।१७।।

जैसे फावड़े से खोदने पर पृथ्वी से जल निकल आता है । उसी तरह किसी गुरु के पास विद्यमान विद्या उसकी सेवा करने से प्राप्त हो जाती है ।।१७ ।।

**कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।**
**तथाऽपि सुधियश्चार्या सुविचार्यैव कुर्वते ।।१८।।**

दोहा—फलसिधि कर्म अधीन है, बुद्धि कर्म अनुसार ।
तौहू सुमति महान जन, करम करहिं सुविचार ।।१८।।

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य को कर्मानुसार ही फल प्राप्त होता है और बुद्धि भी कर्मानुसार ही बनती है । फिर भी बुद्धिमान् लोग अच्छी तरह समझ-बूझ कर ही कोई काम करते हैं ।।१८।।

**एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाऽभिवन्दते ।**
**श्वानयोनिशतं भुक्त्वा चांडालेष्वभिजायते ।।१९।।**

दोहा—एक अच्छरदातुहु गुरुहि, जो नर बन्दे नाहिं ।
जन्म सैकड़ों श्वान ह्वै, जनै चण्डालन माहिं ।।१९।।

एक अक्षर देनेवाले को भी जो मनुष्य अपना गुरु नहीं मानता तो वह सैकड़ों बार कुत्ते की योनि में रह-रह कर अन्त में चाण्डाल होता है ।।१९।।

युगान्ते प्रचलेन्मेरुः कल्पान्ते सप्त सागराः ।
साधवः प्रतिपन्नार्थान्न चलन्ति कदाचन ॥२०॥

दोहा—सात सिन्धु कल्पान्त चलु, मेरु चलै युग अन्त ।
परे प्रयोजन ते कबहुँ, नहिं चलते हैं सन्त ॥२०॥

युग का अन्त हो जाने पर सुमेरु पर्वत डिग जाता है । कल्प का अन्त होने पर सातो सागर भी चंचल हो उठते हैं, पर सज्जन लोग स्वीकार किये हुये मार्ग से विचलित नहीं होते ॥२०॥

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि अन्नमापः सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंख्या विधीयते ॥२१॥

म०छ०--अन्न बारि चारु बोल तीनि रत्न भू अमोल ।
मूढ़ लोग के पषान टूक रत्न के पषान ॥२१॥

सच पूछो तो पृथ्वी भर में तीन ही रत्न हैं--अन्न, जल और मीठी-मीठी बातें । लेकिन बेवकूफ लोग पत्थर के टुकड़ों को ही रत्न मानते हैं ॥२१॥

इति चाणक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

## अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम् ।
दारिद्र्य-रोग-दुःखानि बन्धनव्यसनानि च ॥१॥

म०छ०--निर्धनत्व दुःख बन्ध और विपत्ति सात ।
हैं स्वकर्म वृक्ष जात ये फलैं धरेक गात ॥१॥

मनुष्य अपने द्वारा पल्लवित अपराध रूपी वृक्ष के ये ही फल फलते हैं--दरिद्रता, रोग, दुःख, बन्धन (कैद) और व्यसन ॥१॥

**पुनर्वित्तम्पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही ।**
**एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः ॥२॥**

म०छ०--फेरि वित्त फेरि मित्त, फेरि तो धराहु नित्त ।
फेरि फेरि सर्व एह, ये मानुषि मिलै न देह ॥२॥

गया हुआ धन वापस मिल सकता है, रूठा हुआ मित्र भी राजी किया जा सकता है, हाथ से निकली हुई स्त्री भी फिर वापस आसकती है और छीनी हुई जमीन भी फिर मिल सकती है, पर गया हुआ यह शरीर वापस नहीं मिल सकता ॥२॥

**बहूनां चैव सत्त्वानां समवायो रिपुञ्जयः ।**
**वर्षन्धाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते ॥३॥**

म०छ०--एक ह्वै अनेक लोग वीर्य शत्रु जीत योग ।
मेघ धारि बारि जेत घास ढेर वारि देत ॥३॥

बहुत प्राणियों का सङ्गठित बल शत्रु को परास्त कर देता है, प्रचण्ड वेग के साथ बरसते हुए मेघ को सङ्गठन के बल से क्षुद्र तिनके हरा देते हैं ॥३॥

**जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि ।**
**प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ।४।**

म०छ०--थोर तेल वारि माहिं । गुह्यहू खलानि माहिं ।
दान शास्त्र पात्रज्ञानि । ये बड़े स्वभाव आहि ।।४।।

जल में तेल, दुष्ट मनुष्य में कोई गुप्त बात, सुपात्र में थोड़ा भी दान और समझदार मनुष्य के पास शास्त्र, ये थोड़े होते हुए भी पात्र के प्रभाव से तुरन्त फैल जाते हैं ।।४।।

**धर्माख्याने श्मशाने च रोगिणां या मतिर्भवेत् ।**
**सा सर्वदैव तिष्ठेच्चेत्को न मुच्येत बन्धनात् ।।५।।**

म०छ०--धर्म वीरता मशान । रोग माहिं जौन ज्ञान ।
जो रहे वही सदाइ । बन्ध को न मुक्त होइ ।।५।।

कोई धार्मिक आख्यान सुनने पर, श्मशान में और रुग्णावस्था में मनुष्य की जैसी बुद्धि रहती है, वैसी यदि हमेशा रहे तो कौन मनुष्य मोक्षपद न प्राप्त कर ले ? ।।५।।

**उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी ।**
**तादृशी यदि पूर्वं स्यात्कस्य स्यान्न महोदयः ।।६।।**

म०छ०--आदि चूकि अन्त शोक । जो रहे विचारि दोष ।
पूर्वही बनै जो वैस । कौन को मिले न ऐश ।।६।।

कोई बुरा काम करने पर पछतावे के समय मनुष्य की जैसी बुद्धि रहती है, वैसी यदि पहले ही से रहे तो कौन मनुष्य उन्नत न हो जाय ।।६।।

दाने तपसि शौर्ये वा विज्ञाने विनये नये ।
विस्मयो न हि कर्त्तव्यो वहुरत्ना बसुन्धरा ॥७॥

म०छ०--दान नय विनय नगीच शूरता विज्ञान बीच ।
कीजिये अचर्ज नाहिं, रत्न ढेर भूमि माहिं ॥७॥

दान, तप, वीरता, विज्ञान और नीति, इनके विषय में कभी किसी को विस्मित होना ही नहीं चाहिये । क्योंकि पृथ्वी में बहुत से रत्न भरे पड़े हैं ॥७॥

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः ।
यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः ॥८॥

म०छ०--दूरहू बसै नगीच, जासु जौन चित्त बीच ।
जो न चित्त जासु पूर । है समीपहूँ सो दूर ॥८॥

जो ( मनुष्य ) जिसके हृदय में स्थान किये है, वह दूर रहकर भी दूर नहीं है । जो जिसके हृदय में नहीं रहता, वह समीप रहने पर भी दूर है ॥८॥

यस्माच्च प्रियमिच्छेत्तु तस्य ब्रूयात्सदा प्रियम् ।
व्याधो मृगवधं गन्तुं गीतं गायति सुस्वरम् ॥९॥

म०छ०--जाहिते चहे सुपास, मीठी बोली तासु पास ।
व्याध मारिबे मृगान, मंत्र गावतो सुगान ॥९॥

मनुष्य को चाहिए कि जिस किसी से अपना भला चाहता हो उससे हमेशा मीठी बातें करे । क्योंकि बहेलिया जब हिरन का शिकार करने जाता है तो बड़े मीठे स्वर से गाता है ॥९॥

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फलप्रदाः ।
सेव्यतां मध्यभागेन राजवह्निगुरुस्त्रियः ॥१०॥

म०छ०--अति पास नाश हेत, दूरहू ते फल न देत ।
सेवनीय मध्य भाग, गुरु, भूप नारि आग ॥१०॥

राजा, अग्नि, गुरु और स्त्रियाँ--इनके पास अधिक रहने पर विनाश निश्चित है और दूर रहा जाय तो कुछ मतलब नहीं निकलता । इसलिए इन चारों की आराधना ऐसे करे कि न ज्यादा पास रहे न ज्यादा दूर ॥१०॥

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खाः सर्पो राजकुलानि च ।
नित्यं यत्नेन सेव्यानि प्रसद्यः प्राणहराणि षट् ॥११॥

म०छ०--अग्नि सर्प मूर्ख नारि, राजवंश और वारि ।
यत्न साथ सेवनीय, सद्य ये हरैं छ जीय ॥११॥

आग, पानी, मूर्ख, नारी और राज-परिवार इनकी यत्न के साथ आराधना करै । क्योंकि ये सब तुरन्त प्राण लेने वाले जीव हैं ॥११॥

स जीवति गुणा यस्य यस्य धर्मः स जीवति ।
गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम् ॥१२॥

म०छ०--जीवतो गुणी जो होय, या सुधर्म युक्त जीव ।
धर्म और गुणी न जासु, जीवनो सुव्यर्थ तासु ॥१२॥

जो गुणी है, उसका जीवन सफल है या जो धर्मात्मा है, उसका जन्म सार्थक है । इसके विपरीत गुण और धर्म से विहीन जीवन निष्प्रयोजन है ॥१२॥

यदीच्छसि वशीकर्त्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
पुरः पञ्चदशास्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ॥१३॥

मं०छं०—चाहते वशै जो कीन, एक कर्म लोक तीन ।
पन्द्रहों के तों मुखान, जान तो बहार आन ॥१३॥

यदि तुम केवल एक काम से सारे संसार को अपने वश में करना चाहते हो तो पन्द्रह मुखवाले राक्षस के सामने चरती हुई इन्द्रियरूपी गैयों को उधरसे हटा लो। ये पन्द्रह मुख कौन हैं—आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। मुख, पाँव, लिंग और गुदा, ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ। रूप, रस, गन्ध शब्द और स्पर्श, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं ॥१३॥

प्रस्तावसदृशं वाक्यं प्रभावसदृशं प्रियम् ।
आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति स पण्डितः॥१४॥

सो०—प्रिय स्वभाव अनुकूल, योग प्रसंगे वचन पुनि ।
निजबल के समतूल, कोप जान पण्डित सोई ॥१४॥

जो मनुष्य प्रसंगानुसार बात, प्रकृति के अनुकूल प्रेम और अपनी शक्तिके अनुसार क्रोध करना जानता है, वही पंडित है ॥१४॥

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः ।
कुणपं कामिनी मांसं योगिभिः कामिभिः श्वभिः॥१५॥

सो०—वस्तु एक ही होय, तीनि तरह देखी गई ।
रति मृत माँस सोय, कामी योगी कुक्कुर सो ॥१५॥

एक स्त्री के शरीर को तीन जीव तीन दृष्टि से देखते हैं—योगी

उसे बदबूदार मुर्दे के रूप में देखते हैं कामी उसे कामिनी समझता है और कुत्ता उसे मांसपिण्ड जानता है ।।१५।

सुसिद्धमौषधं धर्मं गृहच्छिद्रं च मैथुनम् ।
कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्न प्रकाशयेत् ।।१६।।

सो०--सिद्धौषध औ धर्म, मैथुन कुवचन भोजनो ।
अपने घरको मर्म, चतुर नहीं प्रगठित करै ।।१६।।

बुद्धिमान् को चाहिए कि इन बातों को किसी से न जाहिर करे--अच्छी तरह तैयार की हुई औषधि, धर्म, अपने घर का दोष, दूषित भोजन और निंद्य कि वदन्ती बचन ।।१६।।

तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलैश्चैव वासराः ।
यावत्सर्वजनानन्ददायिनी वाक् प्रवर्तते ।।१७।।

सो०-- तौलौं मौने ठानि, कोकिलहू दिन काटते ।
जौलौं आनन्द खानि, सब को वाणी होत है ।।१७।।

कोयलें तब तक चुपचाप दिन बिता देती हैं जबतक कि वे सब लोगोंके मनको आनन्दित करनेवाली वाणी नहीं बोलती हैं।१७।

धर्मं धनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम् ।
सुगृहीतं च कर्त्तव्यमन्यथा तु न जीवति ।।१८।।

सो०--धर्म धान्य धनखानि, गुरु वच औषध पाँच यह ।
धार रक्षण करु हित जानि, अन्यथा जीवन नाहिं यह।।१८।।

धर्म, धन, अन्न, गुरु का बचन और औषधि इन वस्तुओं को सावधानी के साथ अपनावे और उनके अनुसार चले । जो ऐसा नहीं करता, वह नहीं जीता है ।।१८।।

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यतः ॥१९॥

सो०--तजौ दुष्ट सहवास, भजो साधु सङ्गम रुचिर ।
करौ पुण्य परकास, हरि सुमिरो जग नित्यहिं ॥१९॥

दुष्टों का साथ छोड़ दो, भले लोगों के समागम में रहो, अपने दिन और रात को पवित्र करके बिताओ और इस अनित्य संसार में नित्य ईश्वर का स्मरण करते रहो ॥१९॥

इति चाणक्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

*

## अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु ।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः ॥१॥

दोहा--जासु चित्त सब जन्तु पर, गलित दया रस माह ।
तासु ज्ञान मुक्ति जटा, भस्म लेप कर काह ॥१॥

जिसका चित्त दया के कारण द्रवीभूत हो जाता है तो उसे फिर ज्ञान, मोक्ष, जटाधारण तथा भस्मलेपन की क्या आवश्यकता हैं ? ॥१॥

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद् दत्त्वा चानृणी भवेत् ॥२॥

दोहा--एकौ अच्छर जो गुरु, शिष्यहिं देत जनाय ।
भूमि माहि धन नाहिं वह, जोदे अनृण कहाय ॥२॥

यदि गुरु एक अक्षर भी बोलकर शिष्य को उपदेश दे देता है तो पृथ्वी में कोई ऐसा द्रव्य है ही नहीं जिसे देकर उस गुरु से उऋण हुआ जाय ॥२॥

**खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया ।**
**उपानद्मुखभङ्गो वा दूरतैव विसर्जनम् ॥३॥**

दोहा--खल काँटा इन दुहुन को, दोई अहैं उपाय ।
जूतन ते मुख तोड़ियो, रहिबो दूरी बचाय ॥३॥

दुष्ट मनुष्य और कण्टक, इन दोनों के प्रतिकार के दो ही मार्ग हैं। या तो उनके लिए पनही ( जूते ) का उपयोग किया जाय या उन्हें दूर ही से त्याग दे ॥३॥

**कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं**
**बह्वाशिनंनिष्ठुरभाषिणं च ।**
**सूर्योदये वाऽस्तमिते शयानं ।**
**विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः ॥४॥**

दोहा--वसन दसन राखै मलिन, बहु भोजन कटु बैन ।
सोवै रवि पिछवतु जगत, तजै जो श्री हरि ऐन ॥४॥

मैले कपड़े पहननेवाला, मैले दाँतवाला, भुक्खड़, नीरस बातें करनेवाला और सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय तक सोनेवाला यदि ईश्वर ही हो तो उसे भी लक्ष्मी त्याग देती हैं ॥४॥

**त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं**
**दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च ।**

तं चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ते ।
ह्यर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ॥५॥

दोहा--तजहिं तीय हित मीत औ, सेवक धन जब नाहिं ।
धन आये बहुरैं सबै धन बन्धू जग माहिं ॥५॥

निर्धन मित्र को मित्र, स्त्री, सेवक और सगे सम्बन्धी छोड़ देते हैं और वही जब फिर धनी हो जाता है तो वे लोग फिर उसके साथ हो लेते हैं। मतलब यह, संसार में धन ही मनुष्य का बन्धु है ॥५॥

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते एकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥६॥

दोहा--करि अनिति धन जोरेऊ, दशे वर्ष ठहराय ।
ग्यारहवें के लागते, जड़ौ मूलते जाय ॥६॥

अन्याय से कमाया हुआ धन केवल दस वर्ष तक टिकता है, ग्यारहवाँ वर्ष लगने पर वह मूल धन के साथ नष्ट हो जाता है ॥६॥

अयुक्तं स्वामिनो युक्तं युक्तं नीचस्य दूषणम् ।
अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शंकरभूषणम् ॥७॥

दोहा--खोटो भल समरत्थ पँह, भलौ खोट लहि नीच ।
विषौ भयो भूषण शिवहिं, अमृत राहु कँह मीच ॥७॥

अयोग्य कार्य भी यदि कोई प्रभावशाली व्यक्ति कर गुजरे तो वह उसके लिए योग्य हो जाता है और नीच प्रकृति का मनुष्य यदि उत्तम काम भी करता है तो वह उसके करने से

अयोग्य साबित हो जाता है। जैसे अमृत भी राहु के लिए मृत्यु का कारण बन गया और विष भी शिवजीके कण्ठका शृङ्गार हो गया ॥७॥

तद्भोजनं यद् द्विजभुक्तशेषं
तत्सौहृदं यत्क्रियते परस्मिन्।
सा प्राज्ञता या न करोति पापं
दम्भं विना यः क्रियते स धर्मः ॥८॥

दोहा—द्विज उबरैउ भोजन सोई, पर सो मैत्री सोय।
जेहि न पाप वह चतुरता, धर्म दम्भ विनुसोय ।।८॥

वही भोजन भोजन है, जो ब्राह्मणों के जीम लेने के बाद बचा हो, वही, प्रेम, प्रेम है जो स्वार्थ वश अपने ही लोगों में न किया जाकर औरों पर भी किया जाय। वही विज्ञता ( समझदारी ) है कि जिसके प्रभाव से कोई पाप न हो सके और वही धर्म है कि जिसमें आडम्बर न हो ॥८॥

मणिर्लुण्ठति पादाग्रे काचः शिरसि धार्यते।
क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः ॥९॥

दोहा—मणि लोटत रहु पाँव तर, काँच रह्यो शिर नाय।
लेत देत मणिही रहे, काँच काँच रहि जाय ॥९॥

वैसे मणि पैरों तले लुढ़के और काँच माथे पर रखा जाय तो इसमें उन दोनों के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। पर जब वे दोनों बाजार में बिकने आवेंगे और उनका क्रय-विक्रय होने लगेगा तब काँच-काँच ही रहेगा और मणि मणि ही ॥९॥

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः
अल्पं च कालो बहुविघ्नता च ।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं,
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥१०॥

दोहा—बहुत विघ्न कम काल है, विद्या शास्त्र अपार ।
जल से जैसे हंस पय, लीजै सार निसार ॥१०॥

शास्त्र अनन्त हैं, बहुत सी विद्यायें हैं, थोड़ा सा समय 'जीवन' है और उसमें बहुत से विघ्न हैं। इसलिये समझदार मनुष्य को उचित है जैसे हंस सबको छोड़कर पानी से दूध केवल लेता है, उसी तरह जो अपने मतलब की बात हो, उसे ले ले बाकी सब छोड़ दे ॥१०॥

दूरागतं पथि श्रान्तं वृथा च गृहमागतम् ।
अनर्चयित्वा यो भुङ्क्ते स वै चाण्डाल उच्यते ।११।

दोहा—दूर देश से राह थकि, बिनु कारज घर आय ।
तेहि बिनु पूजे खाय जो, चाण्डाल कहलाय ॥११॥

जो दूर से आ रहा हो इन अभ्यागतों की सेवा किये बिना जो भोजन कर लेता है उसे चाण्डाल कहना चाहिए ॥११॥

पठन्ति चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः ।
आत्मानं नैव जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा ॥१२॥

दोहा—पढ़े चारहूँ वेदहुँ, धर्म शास्त्र बहु वाद ।
आपुहिं जानै नाहिं ज्यों, करछिहिं व्यञ्जन स्वाद ॥१२॥

कितने लोग चारो वेद और बहुत से धर्मशास्त्र पढ़ जाते हैं, पर वे आपको नहीं समझ पाते, जैसे कि कलछुल पाक में रहकर भी पाक का स्वाद नहीं जान सकती ॥१२॥

धन्या द्विजमयि नौका विपरीता भवार्णवे ।

तरन्त्यधोगताः सर्वे उपरिस्थाः पतन्त्यधः ॥१३॥

दोहा—भवसागर में धन्य है, उलटी यह द्विज नाव ।

नीचे रहि तर जात सब, ऊपर रहि बुड़ि जाय ॥१३॥

यह द्विजमयी नौका धन्य है, कि जो इस संसाररूपी सागरमें उलटे तौर पर चलती है। जो इससे नीचे (नम्र) रहते हैं, वे तर जाते हैं और जो ऊपर (उद्धत) रहते, वे नीचे चले जाते हैं ॥१३॥

अयममृतनिधानं नायकोऽप्योषधीनाम् ।

अमृतमयशरीरः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः ॥

भवति विगतरश्मिर्मण्डलं प्राप्य भानोः ।

परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति ॥१४॥

दोहा—सुधा धाम औषधिपति, छवि युत अमीय शरीर ।

तऊ चंद्र रविढिग मलिन, पर घर कौन गम्भीर ॥१४॥

यद्यपि चन्द्रमा अमृत का भण्डार है, औषधियों का स्वामी है, स्वयं अमृतमय है और कान्तिमान् है। फिर भी जब वह सूर्य के मण्डल में पड़ जाता है तो किरण रहित हो जाता है। पराये घर जाकर भला कौन ऐसा है कि जिसकी लघुता न साबित होती हो ॥१४॥

अलिरयं नलिनीदलमध्यगः
कमलिनीमकरन्दमदालसः ।
विधिवशात्परदेशमुपागतः
कुटजपुष्परसं बहु मन्यते ॥१५॥

दो०—वह अलि नलिनी पति मधुप, तेहि रस मद अलसान ।
परि विदेश विधिवश करै, फूल रसा बहु मान ॥१५॥

यह एक भौंरा है, जो पहले कमलदल के ही बीचमें कमलिनी का वास लेता रहता था संयोगवश वह अब परदेश जा पहुँचा है, वहाँ वह कौरैया के पुष्परस को ही बहुत समझता है ॥१५॥

पीतः क्रुद्धेनतातश्चरणतलहता वल्लभो येन रोषा-
दाबाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे ।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तं
तस्मात्खिन्नासदाहंद्विजकुलनिलयंनाथयुक्तंत्यजामि

स०—क्रोध से तात पियो चरणन से स्वामी हतो जिन रोषते छाती। बालसे वृद्धभये तक मुख में भारति वैरिणी धारे संघाती ॥ मम वासको पुष्प सदा उन तोड़त शिवजीकी पूजा होत प्रभाती। ताते दुख मान सदैव हरी मैं ब्राह्मण कुलको त्याग चिलाती ॥ ब्राह्मण अधिकांश दरिद्र दिखाई देते हैं, कवि कहता है कि इस विषय पर किसी प्रश्नोत्तर के समय लक्ष्मीजी भगवान् से कहती हैं—जिसने क्रुद्ध होकर मेरे पिता को पीलिया, मेरे स्वामी को लात से मारा, बाल्यकाल ही से जो रोज ब्राह्मण लोग वैरिणी ( सरस्वती )

को अपने मुख विवर में आसन दिये रहते है, शिवजी को पूजने के लिये जो रोज मेरा घर ( कमल ) उजाड़ा करते हैं, इन्हीं कारणों से नाराज होकर हे नाथ ! मैं सदैव ब्राह्मण का घर छोड़े रहती हूँ—वहाँ जाती ही नहीं ॥१६॥

बंधनानि खलु सन्तिबहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्।
दारुभेदनिपुणोऽपिषडंघ्रिर्निष्क्रियोभवति पंकजकोशे

दोहा—बन्धन बहु तेरे अहैं, प्रेमबन्धन कछु और।
कठौ काटन में निपुण, बँध्यो कमल महँ भौंर ॥१७॥

वैसे तो बहुत से बन्धन हैं, पर प्रेम की डोर का बन्धन कुछ और ही है। काठको काटने में निपुण भ्रमर कमलदल को काटने में असमर्थ होकर उसमें बँध जाता है ॥१७॥

छिन्नोऽपि चन्दनतरुर्न जहाति गन्धं
वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम्।
यंत्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः
क्षीणोऽपि न त्यजति शीलगुणान् कुलीनः॥१८॥

दोहा—कटे न चन्दन महक तजु, वृद्ध न खेल गजेश।
ऊख न पेरे मधुरता, शील न सकुल कलेश ॥१८॥

काटे जाने पर भी चन्दन का वृक्ष अपनी सुगन्धि नहीं छोड़ता, बूढ़ा हाथी भी खेलवाड़ नहीं छोड़ता, कोल्हू में पेरे जाने पर भी ईख मिठास नहीं छोड़ती, ठीक इसी प्रकार कुलीन पुरुष निर्धन होकर भी अपना शील और गुण नहीं छोड़ता ॥१८॥

उर्व्याकोऽपि महीधरो लघुतरो दोर्भ्यां धृतो लीलया
तेन त्वां दिवि भूतले च सततं गोवर्धनी गीयसे।
त्वां त्रैलोक्यधरं वहामि कुचयोरग्रेण तद्गण्यते
किंवा केशव भाषणेन बहुनापुण्यैर्यशो लभ्यते॥१६॥

स०---कोउभूमिकेमाँहिलघूपर्वतकरधार केनामतुम्हारोपर्यो है।
भूतलस्वर्गकेबीच सभीनेजोगिरिधरधारी प्रसिद्ध कियो है।
तिहुँ लोक के धारक तुमको धरा कुच अग्र कहो यहको गिनतीहै।
ताते बहु कहना हैजो वृथा यशला महरे निज पुण्य मिलती है।

रुक्मिणी भगवान् से कहती हैं हे केशव! आपने एक छोटे से पहाड़ को दोनों हाथों से उठा लिया, इसीलिये स्वर्ग और पृथ्वी दोनों लोकों में गोवर्धनधारी कहे जाने लगे। लेकिन तीनों लोकों को धारण करनेवाले आपको मैं अपने कुचों के अगले भाग से ही उठा लेती हूँ, फिर भी उसकी कोई गिनती नहीं होती। हे नाथ! बहुत कुछ कहने से कोई प्रयोजन नहीं, यही समझ लीजिये कि बड़े पुण्य से यश प्राप्त होता है।

इति चाणक्ये पञ्चदशोऽध्यायः

# अथ षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

न ध्यातुं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नाऽऽलिङ्गितं
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्॥१॥

क०—कबहूँ ना मैंने हरि पदको ध्यान धरा जो मुक्ति पद दाता शास्त्र बीच में कह्यो है। स्वग के भी द्वारको खोलता है बलसे उस धर्म का भी संचय नहीं ही कियो है। नारिन के पुष्ट कुच स्वप्न में न देखे ऐसो खोटो जन्म हमहीं को आय यह मिल्यो है। माता के यौवन छेदन कुठार भये यही हमरो नाम धरा महिं बस तुल्यो है।

किसी मुमूर्षु बूढ़े का पश्चात्ताप है कि संसार के बन्धन को तोड़ने के लिये न मैंने ईश्वर के चरणों का ध्यान किया, न स्वर्ग के दरवाजे तोड़ने की सामर्थ्य रखनेवाले धर्म का ही उपार्जन किया और न कामिनी के कठोर कुच तथा जाँघ का स्वप्न में भी आलिङ्गन किया। जीवन व्यर्थ ही चला गया। हम अपनी माता के यौवन को काटने के लिए कुल्हाड़े ही बने और कुछ नहीं ॥१॥

जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः ॥२॥

दोहा—बोले हैं कोइ और से, चितवत हैं कहिं और ।
मन में चिन्ता अन्य की, न स्त्री रति इक ठौर ॥२॥

स्त्रियाँ बातें दूसरे से करती हैं, नखड़े के साथ देखती हैं, किसी दूसरे की ओर, मन में सोचती हैं किसी और को, स्त्रियों का प्रेम एक जगह रहता ही नहीं है ॥२॥

यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मयि कामिनी ।
स तस्या वशगो भूत्वा नृत्येत् क्रीडाशकुन्तवत् ॥३॥

दोहा—जो मूरख ऐसे गिनत, कामिनी का मोहि ध्यान ।
नाचे वाके बस पर्यो, क्रीड़ा पक्षि समान ॥३॥

जो मूर्ख यह सोचता है कि अमुक स्त्री मेरे पर मुग्ध है, वह उसके वशीभूत होकर खिलौने की चिड़िया के समान नाचता रहता है ॥३॥

कोऽर्थान्प्राप्यनगर्वितोविषयिणःकस्याऽपदोऽस्तंगताः
स्त्रीभिःकस्यनखंडितंभुविमनःको नाम राज्यप्रियः?
कः कालस्यन गोचरत्वमगमत् कोऽर्थी गतो गौरवम्?
को वा दुर्जनदुर्गुणेषु पतितः क्षेमेण यातः पथि?॥४॥

स०—धनसे किसको नहिं गर्व भयो किसकामकि दुःख समूह नसा।
किसके मन खण्डित नाहिं किए जग काहि न राजहिं प्यारकसा।
को काल के गाल में नाहिं परयो को याचक गौरव मानलसा।
दुर्जन के वश में पड़के सुख मारग माहिं जा कौन धसा।

धन प्राप्त कर किसको गर्व नहीं हुआ ?

संसार में कौन ऐसा विषयी पुरुष है कि जिसकी विपत्तियाँ नष्ट हो गयी हैं, कौन ऐसा है जिसका मन स्त्रियों के द्वारा खण्डित न हो गया हो, कौन ऐसा है जो राजा का प्रिय है, कौन ऐसा है जो काल की दृष्टि से बच गया है, कौन ऐसा मनुष्य है जो किसी के यहाँ माँगने के लिए जाकर भी गौरव को प्राप्त हुआ हो, और कौन ऐसा है कि जो दुष्टों की दुष्टता में फँसकर भी कुशलपूर्वक दुनियाँ का रास्ता तै कर गया है ॥४॥

न निर्मिता केन न दृष्टपूर्वा न श्रूयते हेममयी कुरंगी।
तथाऽपितृष्णारघुनंदनस्यविनाशकालेविपरीतबुद्धिः।

दोहा—रचो न देख्यो नहिं सुन्यो, नहीं कनक मृग गात।
तऊ राम तृष्णा स्त्रमति, नाशकाल फिरि जात॥५॥

न कभी किसी ने बनाया न कभी किसी के मुख से सुवर्णमय मृग होने की बात ही सुनी गयी। फिर भी रामन्द्रजी को लोभ हो ही गया। जब विनाशकाल उपस्थित हो जाता है तब समझ-दारों की भी बुद्धि उलटी हो जाती है ॥५॥

गुणैरुत्तमतां यान्ति नोच्चैरासनसंस्थिताः ।
प्रासादशिखरस्थोऽपि किं काकः गरुडायते ?॥६॥

सो०—गुण से पाय बड़ाय, नहिं ऊँचे बैठक लगे ।
बैठि ऊँच घर जाय, कहाँ काग होवे गरुड़ ॥६॥

मनुष्य अपने गुणों से उत्तम बनता है, ऊँचे आसन पर बैठ जाने से नहीं। क्या भव्यभवन के शिखर पर बैठकर कौआ कौए से गरुड़ हो जायगा ॥६॥

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पदः ।
पूर्णेन्दुः किं तथा वंद्यो निष्कलङ्को यथा कृशः ॥७॥

सो०—सब थल गुणहि पुजाय, नहीं महतिहूँ संपदा ।
बन्दि कि तस विधु जाय, पूर चीण अकलंक जस ॥७॥

गुण सर्वत्र पूजे जाते हैं, धन चाहे जितना हो वह सब जगह नहीं पुजायेगा। जिस तरह कि द्वितीया के दुर्बल चन्द्रमा की वन्दना की जाती है उस तरह पूर्ण चन्द्रमा की वन्दना नहीं की जाती है ॥७॥

परप्रोक्तगुणो यस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत् ।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ॥८॥

दोहा—औरन के वर्णन किये, गुणहु हीन गुणवान।
इन्द्रौ लघुताई लहै, निज मुख किये बखान ॥८॥

दूसरे मनुष्य जिसके गुणों की प्रशंसा करें वह गुणहीन होता हुआ भी गुणी हो जाता है। और अपने मुँह अपने गुणों का बखान करने से तो इन्द्र भी छोटे ही मानें जायेंगे ॥८॥

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणाः यान्ति मनोज्ञताम्।
सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम् ॥९॥

दो०—पहुँच विवेकी पुरुष पहँ, अति शोभा गुण पाव।
धनी रत्न छवि तब कहै, जब लहि कनक जड़ाव ॥

गुण जब किसी समझदार मनुष्य के पास जाते हैं तभी सुन्दर लगते हैं। रत्न सोने के अलंकार में जड़ दिया जाता है, तभी जँचता है ॥९॥

गुणैःसर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रयः।
अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥१०॥

दोहा—गुड़ में विष्णु समान हूँ, बिनु अवलम्बहि नाहि।
हाय अमोले मणि तऊ, कनक अवलम्बहिं चाहि ॥१०॥

कोई गुण में चाहे विष्णु भगवान् के समान ही क्यों न हो पर आश्रय के बिना अकेला रहकर वह भी दुखी ही होता है। मणि कितना ही बेशकीमती क्यों न हो, जब तक कि वह सोने के किसी जेवर में नहीं जड़ा जाता तबतक बेकार ही रहता है ॥१०॥

अतिक्लेशेन ये अर्था धर्मस्याऽतिक्रमेण तु।
शत्रूणां प्राणिपातेन ते ह्यर्था न भवन्तु मे ॥११॥

दोहा---अति क्लेश करि धर्म तजि, अथवा परि अरि पाँव ।
जो मिलती संमपत्ति सो, मेरे पास न आव ।।११।।

ज्यादा तकलीफ उठाकर, धर्म छोड़कर या शत्रु से नीचा देखकर धन प्राप्त होता हो तो, ऐसा धन मुझे नहीं चाहिए ।।११।।

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला ।
या तु वेश्येव सामान्यापथिकैरपि भुज्यते ।।१२।।

दोहा---जो सुतिया सम एक रत, तेहि सम्पति करु काह ।
जो वेश्या सम होय तेहि, भोगहिं चलती राह ।।१२।।

उस धन से क्या हो सकता है जो बहू की तरह घर के भीतर बन्द रहे अथवा उस धन से भी कुछ नहीं हो सकता जो लावारिसी तौर से वेश्या की तरह पड़ा हो और रास्ते चलनेवाले ऐरे गैरे भी उसे भोगें ।।१२।।

धने जीवितव्येषु स्त्री चाहारकर्मसु ।
अतृप्ताः प्राणिनस्सर्वे याता यास्यन्तियान्तिच।१३।

दोहा---धन जीवन स्त्री अन्न सो, सब अतृप्त जगमाहिं ।
सब अतृप्तही चलि गये, और सबन चलि जाहिं ।।१३।।

धन, जीवन, स्त्री और भोजन इन चार चीजों से संसार के सभी प्राणी हमेशा अतृप्त रहे हैं । सब इनसे अतृप्त होकर ही चले गये, जायँगे और चले जा रहे हैं ।

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञमहोमबलिक्रियाः ।
न क्षीयन्ते पात्रदानमभयं यत्तु देहिनाम् ।।१४।।

सबहि दान नसि जात है, यज्ञ होम बलिदान ।
पर नहि नसत सुपात्र को, दियो दान शुभजान ॥१४॥

वैसे यह होम और बलिदान आदि दान समय बीतने पर नष्ट हो जाते हैं, पर सत्पात्रको दिया हुआ दान और सर्व-साधारण को दिया दान नष्ट नहीं होता है ॥१४॥

**तृणं लघु तृणात्तूलं तूलादपि च याचकः ।**
**वायुना किं न सो धूतो मामयं याचयिष्यति ॥१५॥**

दोहा—तृण सो लघु है तूल, यहि से है लघु याचकहिं ।
वायुहि ते केहि ना उड़्यो, डरत जो याचहि ताहि ॥१५॥

सबसे हल्की चीज है तृण, तृण से भी हल्की है रुई, रुई से भी हल्का है याचक (माँगने वाला) अब प्रश्न यह होता है कि इतने हल्के जीव को वायु क्यों न उड़ा ले गया तो कहते हैं कि वायु ने उसे इसलिए नहीं उड़ाया कि मेरे पास भी आकर कुछ माँग न बैठे ॥१५।

**वरं प्राणपरित्यागो मानभङ्गेन जीवनात् ।**
**प्राणत्यागे क्षणं दुःखं मानभङ्गे दिने दिने ॥१६॥**

दोहा—मर जानों है बहु भलो, अपमानित हो नाहि ।
प्राण त्यागना क्षणिक दुःख, मान भंग निशिरात ॥

मानभंग करके जीने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है । क्योंकि प्राण त्याग का दुःख थोड़ी देर के लिए होता है और मानभंग का क्लेश तो दिनों दिन होता रहता है ॥१६॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने किं दरिद्रता ? ॥१७॥

मीठी बातें करने से सभी लोग प्रसन्न रहते हैं। ऐसी दशा में मीठी ही बातें करनी चाहिए। बात बोलने में कौन कमी है ।१७।

संसारकूटवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे ।
सुभाषितं च सुस्वादः संगतिः सज्जने जने ॥१८॥

इस संसार रूपी कूटवृक्ष के दो अमृत-फल हैं, एक तो अच्छी-अच्छी बातें और दूसरे सज्जनों की संगति ॥१८॥

जन्मजन्मनि चाभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः :
तेनैवाऽभ्यासयोगेन देही वाऽभ्यस्यते पुनः ॥१९॥

दान, अध्ययन और तप ये जन्म-जन्म के अभ्यास से होते हैं और प्राणी बार-बार इसी का अभ्यास करता रहता है ॥१९॥

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम् ।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥२०॥

जो विद्या कण्ठ में न रहकर पुस्तक में लिखी पड़ी है जो धन अपने हाथ में न रहकर पराये हाथ में पड़ा है अतएव आवश्यकता पड़ने पर अपने काम नहीं आसकती, वह विद्या न विद्या है और न वह धन-धनही है ॥२०॥

इति चाणक्ये षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

# अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

पुस्तकं प्रत्ययाधीतं नाऽधीतं गुरुसन्निधौ ।
सभामध्ये न शोभन्ते जारगर्भा इव स्त्रियः ॥१॥

जिस पण्डित ने गुरु के पास न पढ़कर पुस्तक ही से विद्या प्राप्त कर ली है। ऐसे लोग सभा में नहीं शोभते जैसे व्यभिचारी से गर्भवती स्त्री है ॥१॥

कृते प्रतिकृतिं कुर्यात् हिंसने प्रतिहिंसनम् ।
तत्र दोषो न पतति दुष्टे दौष्ट्यं समाचरेत् ॥२॥

उपकारी के प्रति उपकार, हिंसक के प्रति हिंसा करने में कोई दोष नहीं है, दुष्ट के साथ दुष्टता करनी ही चाहिये ॥२॥

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरेव्यवस्थितम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥३॥

जो वस्तु दूर है, जिसके लिए कठिन आराधना की आवश्यकता पड़ती है और जो अपने से दूर है, वह सब वस्तुयें भी तपस्या से साध्य हो सकती हैं। क्योंकि तपस्या सबसे प्रबल चीज है ॥३॥

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः?
सत्यं यत्तपसा च किं शुचिमनो यद्यस्तितीर्थेन किम्?
सौजन्यं यदि किं गुणैःसुमहिमा यद्यस्ति किंमण्डनैः?
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥४॥

जिसके पासमें लोभ है तो फिर और अवगुण की क्या आवश्यकता ? यदि चुगली करने की आदत है तो और पापों की

क्या जरूरत ? यदि सचाई है तो और तपकी क्या आवश्यकता ? यदि मन शुद्ध है तो तीर्थ करने की क्या जरूरत ? यदि सुजनता है तो और गुणों की जरूरत नहीं, यदि अपना प्रभाव है तो शृङ्गार की कोई आवश्यकता नहीं, यदि अपने पास अच्छी विद्या है तो धन की क्या आवश्यकता और यदि अपयश विद्यामान ह तो मरने की क्या जरूरत है ॥४॥

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरी ।
शंखो भिक्षाटनं कुर्यान्नदत्तमुपतिष्ठते ॥५॥

जिसका बाप रत्नाकार (रत्नोंका खजाना समुद्र) और लक्ष्मी जिसकी सगी बहन है, शंख भी यदि भीख माँगता फिरे तो इसका यही मतलब है कि बिना दिये कुछ किसी को मिलता नहीं ।५।

अशक्तस्तु भवेत्साधुर्ब्रह्मचारी च निर्धनः ।
व्याधिष्ठो देवभक्तश्च वृद्धा नारी पतिव्रता ॥६॥

अशक्त साधु होता है, ब्रह्मचारी निर्धन होता है, रोगी देवताकाभक्त होता है और बूढ़ी स्त्री पतिव्रता हुआ करती है ॥६॥

नाऽन्नोदकसमं दानं न तिथिर्द्वादशी समा ।
न गायत्र्याः परो मन्त्रः न मातुर्दैवतं परम् ॥७॥

अन्न और जल के समान कोई दान नहीं होता, एकादशी की तरह कोई तिथि नहीं होती, गायत्री से चढ़कर कोई मन्त्र नहीं होता और माता से बढ़कर कोई देवता नहीं होता ॥७॥

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकायाः विषं मुखे ।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वाङ्गे दुर्जने विषम् ॥८॥

साँप के दाँत में विष रहता है, मक्खी के मुख में विष रहता है और दुष्ट मनुष्य के सारे शरीर में विष रहता है ॥८॥

पत्युराज्ञां विना नारी उपोष्या व्रतचारिणी ।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥९॥

जो स्त्री पति की आज्ञा के बिना व्रत या उपवास करती है तो वह अपने पतिकी आयु हरती है और अन्तमें नरकगामिनी होती है ॥९॥

न दानात् शुद्ध्यते नारी नोपवासशतैरपि ।
न तीर्थसेवया तद्वद् भर्तुः पादोदकैर्यथा ॥१०॥

स्त्री न दान से, सैकड़ों तरह के व्रत करने से और न तीर्थाटन करने से ही उतना पवित्र होती है, कि जितनी स्वामी के चरणोदक से पुनीत हो जाती है ॥१०॥

पादशेषं पीतशेषं सन्ध्याशेषं तथैव च ।
श्वानमूत्रसमं तोयं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥११॥

पैर धोने के बाद बचा हुआ, पीने के बाद बचा हुआ और सन्ध्या करने के बाद बचा हुआ जल कुत्ते के मूत्र के समान होता है। यदि भ्रमवश भी वह जल पीले तो चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥११॥

दानेन पाणिर्नतु कंकणेन स्नानेन शुद्धिर्नतु चन्दनेन।
मानेनतृप्तिर्नं तु भोजनेनज्ञानेन मुक्तिर्नतुमण्डनेन १२।

हाथों की शोभा होती है दान से न कि कंकणों से। स्नान से शरीर की शुद्धि होती है न कि चन्दनलेप से। सज्जनों की तृप्ति सम्मान से होती है न कि भोजन से। उसी तरह मुक्ति

ज्ञान से होती है, अच्छे वेश-भूषा और शृङ्गार से नहीं ॥१२॥

नापितस्य गृहे क्षौरं पाषाणे गन्धलेपनम् ।
आत्मरूपं जले पश्येत् शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥१३॥

मनुष्य नाई के घर हजामत बनवाता, स्वयं पत्थर पर चन्दन घिस कर लगाता और जल में अपनी छाया देखता है, वह यदि इन्द्र भी हो तो उसकी श्री नष्ट हो जाती है ॥१३॥

सद्यः प्रज्ञा हरेत्तुण्डी सद्यः प्रज्ञाकरी वचा ।
सद्यः शक्तिहरा नारी सद्यः शक्तिकरः पयः ॥१४॥

तुण्डी ( कुन्दरू ) तुरन्त बुद्धि हर लेती है, वचा तुरन्त बुद्धि प्रदान करती है, स्त्री तुरन्त शक्ति हर लेती है और दूध तुरन्त बल प्रदान करता है । १४॥

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम् ।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदस्तुः पदे पदे ॥१५॥

जिन लोगों के हृदय में परोपकार की भावना विद्यमान रहती उनकी सब विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं और पद-पद पर सम्पत्तियाँ मिलती रहती हैं ॥१५॥

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो विनयगुणोपेतः ।
तनये तनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम् ॥१६॥

यदि घर में सुन्दरी स्त्री है, यदि मन माफिक धन (लक्ष्मी) मौजूद है, यदि विनय और बुद्धि से युक्त पुत्र घर में है और यदि पुत्र के भी पुत्र हो चुका है तो फिर स्वर्ग में इससे अधिक सुख कौन सा होगा ? ॥१६॥

आहार-निद्रा-भय-मैथुनानि
समानि चैतानि नृणां पशूनाम् ।
ज्ञानं नराणमाधिको विशेषो
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥१७॥

भोजन, शयन, भय और स्त्री प्रसंग, ये बातें तो मनुष्य और पशु में समान भाव से विद्यमान रहती हैं। मनुष्यों में केवल ज्ञान की विशेषता रहती है, वह विशेषता भी जिसमें नहीं है, उसे पशु ही समझना चाहिये ॥१७॥

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालै—
र्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या ।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषो—
भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने वसन्ति ॥१८॥

यदि मदके मोह से पहुँचे हुए भौरों को गजराज ने अपने कानों की फड़फड़ाहट से भगा दिया तो इसमें उसीके गण्डस्थलों की शोभा नष्ट हुई। भौंरे तो वहाँ से जाकर फूले हुए कमलों के बीच में निवास करेंगे। इसी प्रकार यदि कोई मदान्ध राजा किसी गुणी का आदर न करके उसे अपने यहाँ से निकाल देता है तो उससे उस राजा ही की हानि होती है, गुणी तो कहीं न कहीं पहुँच कर अपना अड्डा जमा ही लेगा ॥१८॥

राजा वेश्या यमश्चाग्निश्चौरा बालकयाचकाः
परदुःखं न जानन्ति अष्टमो ग्रामकण्टकः ॥१९॥

राजा, वेश्या, यम, अग्नि, चोर, बालक, भिखारी और ग्रामकण्टक यानी गाँववालों को दुःख देनेवाला, ये आठ प्राणी दूसरे के दुःख नहीं समझते ॥१९॥

**अध: पश्यसि किं बाले ! पतितं तव किं भुवि ?**
**रे रे मूर्ख ! न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम् ।२०।**

कोई स्त्री किसी पुरुषको देखकर लज्जा भावसे सिर नीचा करके एक तरफ खड़ी हो गई। इस पर भी उस बेहया पुरुषने उसे छेड़ते हुए पूछा–बाले ! तुम्हारी कोई चीज गिर गयी है! क्या ढूँढ़ रही हो! इसपर उसने झुँझलाके जवाब दिया–अरे मूर्ख ! क्या तू नहीं जानता ? यहाँ मेरी जवानीकी मोती खो गयी है ॥२०॥

**व्यालाश्रयोऽपि विफलाऽपि सकण्टकाऽपि**
**वक्राऽपि पंकसहिताऽपि दुरासदाऽपि ।**
**गन्धेन बन्धुरसि केतकि सर्वजन्तो–**
**रेको गुण: खलु हन्ति समस्तदोषान् ॥२१॥**

कवि अन्योक्ति के रूप में केतकी (केवड़ा) से कहता है–केतकी ! यद्यपि तू साँपों का घर है, तेरे में काँटे भी बहुत होते हैं, तू टेढ़ी-मेढ़ी भी है, तेरे में कीचड़ भी होता है और तू मीलती भी मुश्किलसे है फिर भी तेरे में सुगन्ध है, उसी सुगंध की बदौलत तू सबको प्रिय है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य में चाहे कितने ही अवगुण हों पर यदि एक भी उज्जवल गुण उसके पास रहता ह तो उसके सब दोष छूमन्तर हो जाते हैं ॥२०॥

इति श्री पं० रामतेजपाण्डेयकृतभाषानुवाद सहितश्चाणक्य-नीतिदर्पण: समाप्त: ।

# ❋ ज्योतिष विद्या का चमत्कार ❋

## एकबार अवश्य मँगावें ।

आप आश्चर्य न करें तो अच्छाही है । इस दुनियाँ में सभी कलायें एक तरफ और "ज्योतिष विद्या का चमत्कार एक तरफ है" बड़े से बड़े राजा, महाराजा, नेता, उद्योगपति हो वा जन साधारण सभी को भगवान भरोसे रहनाही पड़ता है और इस विद्या के ऊपर विश्वास करने सेही आपके भूत भविष्य व वर्तमान की सहायता से मालूम पड़ती है, जिसे आप स्वयं पढ़कर अनुभव करिये ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् | ६४) | बृहज्जातक भा.टी. | ३०) |
| भृगुसंहिताफलितसर्वाङ्ग | ३६) | रमलदिवाकर ,, | १६) |
| मानसागरी भा. टी. | २८) | सामुद्रिक रहस्य ,, | १०) |
| ताजिकनीलकंठी ,, | २०) | लग्नचन्द्रिका ,, | ८) |
| जातकाभरण ,, | २०) | गृहरत्नभूषण ,, | ५) |
| बृहद्ज्योतिषसार ,, | १५) | वास्तुप्रबन्ध ,, | ८) |
| कर्मविपाक ,, | १५) | ग्रहबल दर्पण ,, | ६) |
| भावकुतुहल ,, | १५) | जन्मप्रबोध ,, | ३) |
| मुहूर्तचिन्तामणि ,, | १३) | शीघ्रबोध ,, | ४) |
| लघुपाराशरी हिन्दी टीका | ५) | जातकालंकार भा.टी. | २)५० |
| | | विवाहदाम्पत्य निर्णय | १४) |

हर प्रकार की पुस्तक मिलने का पता —

**ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर,**

राजादरवाजा, वाराणसी ।

मुद्रक—स्वतन्त्रभारत प्रेस, वाराणसी ।